मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 61 • वर्ष 7, अंक 6 • अगस्त 2017 • पाँच रुपये • 16 पृष्ठ

# मज़दूर बिगुल


अस्पताल में मौत का तांडव : ज़िम्मेदार कौन? 8

दिल्ली आँगनवाड़ी महिलाओं का लम्बा और जुझारू संघर्ष 3

आज़ादी कूच: एक सम्भावना-सम्पन्न आन्दोलन के अन्तरविरोध और भविष्य का प्रश्न 9


## गोरखपुर में ऑक्सीजन की सप्लाई रोकने से मासूमों की मौत

# अब भी चेत जाओ वरना हत्यारों-लुटेरों का यह गिरोह पूरे समाज की ऑक्सीजन बन्द कर देगा!

**– सम्पादक मण्डल**

पिछले 11 अगस्त को, आज़ादी के 70 साल पूरे होने से चार दिन पहले, एक और भयानक घटना ने हमें याद दिलाया दिया कि हमें किस तरह की आज़ादी मिली है। एक दिन में 23 और पाँच दिनों में 79 मासूम बच्चे मौत की नींद सुला दिये गये, उसी अस्पताल में जहाँ उनके ग़रीब माँ-बाप उनकी ज़िन्दगी बचाने के लिए उन्हें लेकर आये थे। मौतों का सिलसिला उसके बाद भी जारी रहा। यह कोई हादसा नहीं था, जैसाकि खूनसने हाथों वाले प्रधानमंत्री ने लाल किले के अपने भाषण में बड़ी आसानी से कह दिया। यह एक हत्या थी। मार्च से ही अस्पताल से मुख्यमंत्री सहित तमाम अधिकारियों को पत्र लिखे जा रहे थे कि कंपनी को भुगतान नहीं किया गया तो वह ऑक्सीजन रोक देगी। महज़ 67 लाख रुपये न चुकाने के कारण न जाने

कितने परिवार सूने हो गये। मगर प्रदेश का मुखिया और उसका स्वास्थ्य मंत्री बेशर्मी से झूठ बोलते रहे और बच्चों की मौतों के लिए कभी गन्दगी तो कभी अगस्त महीने को ज़िम्मेदार ठहराते रहे।

यूरोप का कोई देश होता तो इतनी बड़ी घटना पर सरकार गिर गयी होती। लेकिन यहाँ तो इस हत्याकाण्ड पर परदा डालने की घिनौनी कोशिशें तुरन्त ही शुरू हो गयीं। अस्पताल को पुलिस छावनी बना दिया गया, बच्चों के परिजनों को उनके शवों का पोस्टमॉर्टम कराये बिना जल्दी-जल्दी वहाँ से घर भेज दिया गया। जिस डॉक्टर ने उस खूनी रात बच्चों की जान बचाने की पूरी कोशिश की थी, उसे ही निलम्बित कर दिया गया और आरएसएस की झूठ फैलाने की मशीनरी ने तमाम तरह के झूठ फैलाने शुरू कर दिये – इस बात का फ़ायदा उठाकर कि

(पेज 8 पर जारी)

## अर्थव्यवस्था में सुधार के हवाई दावों की हक़ीक़त

### रिज़र्व बैंक का ताज़ा सर्वेक्षण और साढ़े तीन साल के आँकड़े बताते हैं कि मेहनतकशों के लिए और भी बुरे दिन आने वाले हैं

**मुकेश असीम**

2014 के चुनाव में मोदी के नेतृत्व में बीजेपी को मिले व्यापक समर्थन के पीछे अन्य कारणों में से एक अर्थव्यवस्था में सुधार, विकास और करोड़ों रोज़गार प्रतिवर्ष सृजन से अच्छे दिन लाने का वादा था, जिस पर अपने जीवन के संकटों से परेशान जनता के एक बड़े हिस्से ने विश्वास किया था। पिछले 3 सालों में सरकार और मीडिया दोनों ने यह बताने में अपनी पूरी प्रचार ताक़त झोंकी है कि अर्थव्यवस्था में बड़ी तेज़ी से सुधार हो रहा है। लेकिन रिज़र्व बैंक द्वारा जून 2017 में कराये गये उपभोक्ता विश्वास सर्वेक्षण में जो नतीजे सामने आये हैं, वे कुछ दूसरी ही कहानी बयान करते हैं।

1.) 40% लोगों ने कहा कि पिछले एक साल में रोज़गार उपलब्धता की स्थिति बिगड़ी है। सुधार सिर्फ़ 28% को ही नज़र आ रहा है, जबकि 2014 में मोदी सरकार आने के वक़्त 55% को रोज़गार की स्थिति में सुधार की उम्मीद थी।

2.) 40% को आर्थिक हालात और भी बदतर होते नज़र आ रहे हैं, बेहतरी की उम्मीद सिर्फ़ 30% को है।

3.) आमदनी घटने की आशंका वाले लोग बढ़ने की उम्मीद वालों के लगभग बराबर हो गये हैं, बढ़ने की उम्मीद सिर्फ़ 24% को है तो घटने की 23% को।

यह दर्शाता है कि सारे प्रचार के बावजूद अपने जीवन की कटु वास्तविकता का अनुभव आम लोगों को प्रचार के पीछे की असली तस्वीर देखने पर विवश कर रहा है। लेकिन यह एक अनुभूति-मात्र नहीं है। अगस्त के महीने में अर्थव्यवस्था की स्थिति दर्शाने वाले कई आधिकारिक मूल्यांकन प्रकाशित हुए हैं। इनमें रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति और केन्द्र सरकार द्वारा प्रकशित आर्थिक सर्वे की दूसरी किश्त मुख्य हैं। ये भी इस अनुभूति की ही पुष्टि करते हैं। हम इनमें सामने आये तथ्यों के आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था की मौजूदा हालत और मेहनतकश जनता के जीवन पर उसके असर का एक संक्षिप्त विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

3 अगस्त को रिज़र्व बैंक ने बैंकों के लिए ब्याज़ दर में 0.25% की कमी कर इसे 6 सालों में सबसे कम 6% कर दिया। इस क़दम के समर्थन के लिए उसके नीति वक्तव्य के मुख्य बिन्दु ये हैं। औद्योगिक प्रदर्शन कमजोर हुआ है, ख़ास तौर पर मैन्युफ़ैक्चरिंग क्षेत्र में व्यापक गतिरोध की स्थिति है। उत्पादन में सुस्ती के चलते उद्योगों में कोयले, बिजली और पेट्रोलियम की माँग घटी है। उत्पादित कोयले का बड़ा भण्डार अनबिके पड़ा है। बिजली उत्पादन क्षमता के अनुसार बिक नहीं पा रही है। इसके चलते कोयले, बिजली, और क्रूड पेट्रोलियम का उत्पादन कम हुआ है। (जून 2017 में औद्योगिक गतिविधि के सूचकांक माने जाने वाले कोयले का उत्पादन 6.7% और सीमेण्ट का 5.8% घटा है।) अच्छे मानसून के चलते कृषि उत्पादन बढ़ा है, फिर भी खाद की माँग नहीं बढ़ने से उसका उत्पादन भी गिरा है। रोज़मर्रा की ज़रूरी उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन ठीक है (क्योंकि ख़राब आर्थिक हालत में भी नमक, चीनी, चाय, साबुन जैसी चीज़ें तो ख़रीदी ही जाती हैं) लेकिन टिकाऊ उपभोक्ता उत्पादों (टीवी, फ्रिज़, स्कूटर, साईकिल, आदि) की माँग सुस्त होने से उत्पादन घटा है (आर्थिक हालत ख़राब दिखे तो पहले इनकी ही ख़रीदारी में कटौती की जाती है)।

कैपिटल गुड्स अर्थात वे पूँजीगत वस्तु (मशीनें, ट्रक, ट्रैक्टर, आदि), जिन्हें उपभोक्ताओं द्वारा नहीं बल्कि उत्पादन-व्यापार को चलाने हेतु उपयोग किया जाता है, का उत्पादन भी घटा है क्योंकि उपभोक्ताओं की सीमित माँग के चलते नये उद्योग में पूँजी लगाने का काम ठप्प है। रिज़र्व बैंक के अनुसार पिछले 12 साल में सबसे कम नया निवेश इस साल की अप्रैल-जून तिमाही में हुआ है। ख़ुद पूँजीपति मान रहे हैं कि कारोबारी हालात में ख़राबी आयी है, पहले से अटके प्रोजेक्ट की स्थिति में कोई सुधार नहीं है और इंफ़्रास्ट्रक्चर निर्माण (सड़क, पुल, बाँध, बिजलीघर, इमारतें, अस्पताल आदि) में मन्दी का आलम है। रिज़र्व बैंक ने औद्योगिक उत्पादन की सम्भावना के अपने 78वें सर्वे में पाया कि अधिकांश उद्योग प्रबन्धकों और विश्लेषकों को उपभोक्ता माँग, पूँजी निवेश, मुनाफ़े और नये रोज़गार सृजन की उम्मीदों में गिरावट नज़र आ रही है। इसी बात की पुष्टि जुलाई में किये गये विभिन्न कम्पनियों के क्रय प्रबन्धकों के सर्वे के इण्डेक्स (PMI) से भी हुई है जिसमें नये बिक्री ऑर्डर्स, स्थापित उत्पादन क्षमता के उपयोग और उत्पादन में गिरावट का अन्देशा जताया गया है। नतीजा यह कि कुल पूँजी निवेश 2007

(पेज 12 पर जारी)

**बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!**

# फैक्ट्रियों के अनुभव और मज़दूर बिगुल से मिली समझ ने मुझे सही रास्ता दिखाया है

प्रिय सम्पादक महोदय और दोस्तो! मेरा नाम प्रेम है और मैं पिछले क़रीब एक साल से मज़दूर बिगुल अख़बार का नियमित पाठक हूँ। इसके प्रत्येक अंक का मुझे बेसब्री से इन्तज़ार रहता है। बिगुल तमाम मुद्दों पर तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ अपना स्टैण्ड रखता है। निश्चित रूप से देश-विदेश के तमाम ज़रूरी मुद्दों और समस्याओं पर आम मेहनतकश आबादी के साथ-साथ युवाओं की समझदारी बढ़ाने के लिए मज़दूर बिगुल अख़बार शानदार काम कर रहा है। यदि यह मासिक की बजाय पाक्षिक हो जाये तो बहुत बेहतर हो किन्तु तब तक यह प्रत्येक महीने के शुरू में तो पाठकों के हाथ में आ ही जाये, ताकि यह पुराना न लगे। मैं बिगुल के पन्नों पर अपने तमाम मेहनतकश भाइयों और पाठकों के समक्ष अपने जीवन के कुछ अनुभव भी साझा करना चाहता था जिसका कि मुझे अब मौक़ा मिला है।

मैंने गुड़गाँव ऑटोमोबाइल सेक्टर की 'वाही संस प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी' में तक़रीबन साल-भर काम किया है। यह कम्पनी केएसएस अभिषेक, ऑटोलिव और लैण्डर की वेण्डर कम्पनी है। यह कम्पनी बहुत ही तेज़ी से विस्तारित हो रही है। एक परिचित के माध्यम से मेरा 'इण्टरव्यू' कम्पनी में हुआ था। मैं बीटेक करके गया था जबकि मेरा 'इण्टरव्यू' लेने वाला सज्जन सिर्फ़ बीए पास था। जो 'टेक्निकल इण्टरव्यू' वह ले रहा था, उसके बारे में उसे ज़रा भी ज्ञान नहीं था। 'इण्टरव्यू' के बाद मुझे 10 दिन हेतु 'ट्रेनिंग' पर रख लिया गया उसके बाद काम देखकर ही आगे रखने का तय हुआ। मुझे गुणवत्ता जाँच विभाग ('क्वालिटी कण्ट्रोल डिपार्टमेण्ट') में रखा गया था। यहाँ पर उत्पाद ('प्रोडक्ट') यदि गुणवत्ता की सीमा से बाहर भी जा रहा हो किन्तु रिजेक्शन नहीं आ रही हो तो भी उत्पादन चलते रहने देना था। उत्पाद ('प्रोडक्ट') की सीमा ('टोलरेंस') को बदलने की बजाय उसे ऐसे ही चलते रहने देने की हिदायत थी। स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो प्रोडक्शन मैनेजर को उत्पादन चाहिए होता था चाहे उसकी गुणवत्ता ('क्वालिटी') कैसी भी हो, किन्तु 'क्वालिटी मैनेजर' को उत्पाद की गुणवत्ता चाहिए होती थी फिर उत्पादन भले ही हो या न हो! किन्तु नौकरशाही के इस विचित्र ढंग-ढर्रे में पिस हमारे जैसे रहे थे। जब मशीन पर उत्पाद के गुणवत्ता सीमाओं से बाहर जाने पर या अन्य दोष आने पर हम इसे फ़िट बैठाने हेतु मशीन रोकने का प्रयास करते तो 'प्रोडक्शन मैनेजर' हमें बुरी तरह से धमकाता तथा यदि तैयार उत्पाद की गुणवत्ता ख़राब होती तो 'क्वालिटी मैनेजर' हमारा जीना हराम कर देता कि तुम लोग अपनी ड्यूटी अच्छी तरह से नहीं करते हो! यह साफ़ था कि हमारे हाथ में कुछ नहीं था और हम लोग मानसिक रूप से परेशान रहने लगे। इस प्रकार अपना हुनर चमकाने और इसे निखारने का भूत जल्द ही मेरे सिर से उतर गया। मेरा वेतन 8,000 रुपये था किन्तु काट-पीटकर मात्र 6,800 रुपये मुझे थमा दिये जाते थे। मानेसर जैसे शहर में इतनी कम तनख़्वाह से घर पर पैसे भेजने की तो कोई सोच भी नहीं सकता, अपना ही गुज़ारा चल जाये तो गनीमत समझिए, बल्कि कई बार तो उल्टा घर से पैसे मँगाने भी पड़ जाते थे।

मैं तो हालाँकि स्टाफ़ में था, वहाँ पर काम कर रहे मज़दूरों के हालात तो बेहद ख़राब थे। उन्हें काफ़ी कम वेतन दिया जाता था। सरकार द्वारा तय न्यूनतम मज़दूरी व अन्य आर्थिक लाभ देने का तो मतलब ही नहीं है। कम्पनी को ज़रूरत पड़ने पर ज़बरदस्ती ओवरटाइम करवाया जाता था। वेतन में होने वाली बढ़ोत्तरी भी बहुत कम थी। वेतन भी इसी आधार पर बढ़ाया जाता था कि कौन किसका ख़ास है। कम्पनी का मुनाफ़ा करोड़ों में था तथा बढ़ता ही जा रहा था। जबकि काम कर रहे मज़दूरों को जीने-भर की ख़ुराक ही मुश्किल से नसीब होती थी। मज़दूरों के लिए रहने-खाने की व्यवस्था कम्पनी की ओर से थी। एक-एक कमरे में 4-5 मज़दूर किसी-न-किसी तरह से मुर्गी के दड़बों जैसे कमरों में रहते थे। खाने को खाना नहीं कहा जा सकता था। दिन को हालाँकि स्टाफ़ और मज़दूर साथ ही खाते थे तो खाने की गुणवत्ता अपेक्षाकृत ठीक होती थी, किन्तु अन्य समय मज़दूरों को बेहद घटिया खाना परोसा जाता था। शौचालय और स्नानागार भी लगातार बदबू करते रहते थे, क्योंकि इन्हें मालिक को तो इस्तेमाल करना होता नहीं था!

कम्पनी में मज़दूरों पर काम का दबाव बहुत ज़्यादा रहता था। शोषण की चक्की में मज़दूर सबसे निचले पायदान पर जो थे। ऊपर से लेकर डॉट-फटकार रिसती हुई स्टाफ़ तक आती थी, फिर यह गाली-गलौज बनकर मज़दूरों पर बरसती थी। मज़दूरों की कार्यस्थिति भी सुरक्षित नहीं थी। मशीनों पर सेंसर नहीं लगाये गये थे, क्योंकि यदि सेंसर लगाये जाते तो काम करते वक़्त यदि मज़दूर का हाथ या शरीर का कोई अंग आ जाये तो उससे मशीन ख़ुद-ब-ख़ुद रुक जायेगी और मशीन की उत्पादन रफ़्तार इससे धीमी हो जायेगी। अब मशीनों पर कोई मालिक के घर का आदमी तो काम कर नहीं रहा होता था। सुरक्षा की बदइन्तज़ामी के चलते आये दिन दुर्घटनाएँ होती रहती थीं, जिनमें मज़दूरों की उँगलियाँ और हाथ तक दुर्घटनाग्रस्त होते रहते थे। इसके बावजूद मशीनों पर सेंसर नहीं लगाये गये, क्योंकि मालिक को सिर्फ़ मुनाफ़े की फ़िक्र थी। मज़दूर तो जैसे उसके लिए मशीन के पुर्ज़े थे। एक बार तो मेरी आँखों के सामने ही दुर्घटना हो गयी। एक मज़दूर प्रोजेक्शन वेल्डिंग मशीन पर काम कर रहा था। मशीन की रफ़्तार तेज़ थी और मज़दूर अपना अँगूठा बाहर नहीं निकाल पाया जिससे इलेक्ट्रोड (वेल्डिंग में प्रयुक्त होने वाली लोहे की छड़) उसके अँगूठे के आर-पार हो गयी और इस कारण से अँगूठे से ख़ून टपकने लगा। मैं उस समय लाइन पर ही था। मेरी जैसे ही नज़र पड़ी तो मैंने उस मज़दूर से तुरन्त मशीन छोड़ने और पट्टी करवाने के लिए, कहा, किन्तु उसकी आँखों में आँसू थे और वह कहने लगा कि मैं बाद में पट्टी करा लूँगा, अगर ऊपर वाले स्टाफ़ और मालिक को पता चल गया तो मेरी लापरवाही बताकर मुझे काम से निकाल देंगे। इन अमानवीय हालात में मज़दूर काम करने के लिए मजबूर हैं। इसके बावजूद भी मनमाने तरीक़े से छँटनी कर दी जाती है। न्यूनतम मज़दूरी, काम के घण्टे, सुरक्षा के इन्तज़ाम जैसे तमाम श्रम क़ानूनों की सरेआम धज्जियाँ उड़ायी जाती हैं। प्रशासन और श्रम विभाग इस अंधेरगर्दी की तरफ़ से बिलकुल आँखें मूँदे रहता है क्योंकि कम्पनी की तरफ़ से टुकड़े फेंक दिये जाते होंगे। कम्पनी के अन्दर भी मज़दूर एकजुट नहीं हो पाते। निजी स्वार्थ के चलते कुछ मज़दूर मालिक की चमचागिरी करने लगते हैं, जिससे मज़दूरों में अलग-अलग ग्रुप बन जाते हैं और प्रबन्धन आराम से इस फूट का फ़ायदा उठाता है। पहले मैं सोचता था कि आख़िर यहाँ पर मज़दूर इतने अमानवीय हालात में भी काम क्यों करते हैं? बाद में यह बात समझ में आयी कि क्योंकि उनको पता है कि बाहर बेरोज़गारों की बहुत बड़ी भीड़ खड़ी है। वे जानते हैं कि कुछ भी बोलने पर और आवाज़ उठाने पर उन्हें लात मारकर भगा दिया जायेगा और फिर वे परिवार समेत भूखे मरने के लिए रोड़ पर आ जायेंगे! इसलिए मज़दूर इस पूँजीवादी गुलामी को अपना भाग्य मानकर उम्र-भर इसे झेलते रहते हैं। उस समय तो बहुत-सी चीज़ें मेरी भी समझ में नहीं आयी थीं, किन्तु अब मैं समझ सकता हूँ और चीज़ों को जोड़कर देख सकता हूँ। मुझे लगता है कि आज भी मज़दूरों की एकजुटता ही वह हथियार बनेगी जिसके दम पर वे अपने हक़-अधिकार को लड़कर हासिल करेंगे। और सबसे बढ़कर मेहनतकशों के राज 'समाजवाद' को स्थापित करेंगे। उत्पादन के बदलते हुए हालात के अनुसार ही हमें अपने संगठन के तौर-तरीक़े भी बदलने पड़ेंगे। जिस तरह से हर व्यवस्था बदलती है वैसे ही यह शोषणकारी व्यवस्था भी बदलेगी और उस बदलाव में मज़दूर वर्ग की अहम भूमिका होगी। दुनिया-भर में मज़दूर वर्ग ने इकट्ठे होकर बड़े से बड़े चमत्कार किये हैं निश्चय ही भारत का मज़दूर वर्ग भी जागेगा और संगठित होकर लड़ेगा, तब ज़रूर सफलता उसके क़दम चूमेगी। धन्यवाद,

आपका अपना साथी, प्रेम

**पूँजीपतियों के पास दर्जनों अख़बार और टीवी चैनल हैं। मज़दूरों के पास है उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'! इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।**

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव
आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:

डाक से भेजने का पता: मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
ईमेल से भेजने का पता: bigulakhbar@gmail.com

**मज़दूर बिगुल की वेबसाइट**
**www.mazdoorbigul.net**

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

## 'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853093555, 9721481546
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul


**मज़दूर बिगुल**

| | |
|---|---|
| सम्पादकीय कार्यालय | : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555 |
| दिल्ली सम्पर्क | : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928 |
| ईमेल | : bigulakhbar@gmail.com |
| मूल्य | : एक प्रति - 5/- रुपये<br>वार्षिक - 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित)<br>आजीवन सदस्यता - 2000/- रुपये |

# दिल्ली आँगनवाड़ी महिलाओं का लम्बा और जुझारू संघर्ष!

## 22000 कामगारों की यह हड़ताल महज़ मानदेय बढ़ाने की आर्थिक माँग के लिए नहीं है, बल्कि यूनियन के नेतृत्व में संगठित होने के राजनीतिक अधिकार के लिए भी है।

**इस रिपोर्ट के लिखे जाने तक दिल्ली की आँगनवाड़ी की कार्यकर्ताएँ और सहायिकाएँ अपनी यूनियन 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' के नेतृत्व में अपनी हड़ताल के पचासवें दिन में प्रवेश कर चुकी है। यह हड़ताल दिल्ली के मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में एक ऐतिहासिक हड़ताल बन चुकी है। देश और दुनिया के अन्य कोनों से इसे कई यूनियनों का समर्थन भी प्राप्त हो रहा है। जहाँ एक तरफ़ तो यह हड़ताल आँगनवाड़ी महिलाओं के साहस और बहादुरी की एक मिसाल बन गयी है, वहीं अरविन्द केजरीवाल सरकार और आम आदमी पार्टी का मज़दूर एवं स्त्री विरोधी चेहरा भी पूरी तरह से बेनकाब हो चुका है।**

**– विशेष संवाददाता**

आज के इस दौर में अगर आपकी तनख़्वाह सिर्फ़ 2500 और 5000 हो और वो भी दिल्ली जैसे शहर में, तो क्या आप चुप रहेंगे? क्या इस अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ बुलन्द नहीं करेंगे? और अगर ऐसा करेंगे तो क्या आपको ही ज़िम्मेदार ठहराया जायेगा? न्याय का तक़ाज़ा तो ये नहीं है, पर दिल्ली की आँगनबाड़ी महिला कामगारों के साथ ऐसा हो रहा है। पूरी रिपोर्ट नीचे पढ़ें –

ज्ञात हो कि जून की 28 तारीख़ से दिल्ली की आँगनवाड़ी की महिलाएँ अपनी यूनियन 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' के नेतृत्व में हड़ताल पर हैं। रिपोर्ट के लिखे जाने तक उनका धरना और क्रमिक भूख हड़ताल मुख्यमन्त्री अरविन्द केजरीवाल के आवास पर जारी है। हड़ताल में हज़ारों की संख्या में वर्कर्स और हेल्पर्स शामिल हो रहे हैं। ख़ुद को 'आम आदमी' की सरकार कहने वाली अरविन्द केजरीवाल की सरकार कितनी मज़दूर-विरोधी, ग़ैर-जनवादी और संवेदनहीन हो सकती है, इसका पता आँगनवाड़ी महिलाओं की हड़ताल को देखकर लगाया जा सकता है।

### आख़िर आँगनवाड़ी की महिलाएँ हड़ताल पर क्यों गयीं?

जैसाकि पहले भी 2015 में बिगुल के पन्नों पर ख़बर आ चुकी है कि 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' के नेतृत्व में आँगनवाड़ी महिलाओं की 23 दिन लम्बी चली हड़ताल जीतने के बाद मुख्यमन्त्री केजरीवाल ने स्वयं यूनियन के साथ एक लिखित समझौता किया था, जिसमें उन्होंने आँगनवाड़ी महिलाओं की सभी माँगों को स्वीकार किया था। लेकिन दो साल बीत जाने के बाद भी दिल्ली सरकार ने हमारी मुख्य माँगों को लागू नहीं किया। पिछले दो सालों से महिलाओं ने यूनियन के बैनर तले कभी दिल्ली सचिवालय पर तो कभी केजरीवाल के आवास पर प्रदर्शन किया। लेकिन इतने पर भी सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। जब कोई सुनवाई नहीं हुई तो यूनियन के नेतृत्व में आँगनवाड़ी महिलाओं ने फ़ैसला लिया कि इस साल अप्रैल में होने वाले नगर निगम के चुनाव में आँगनवाड़ी की महिलाएँ अपने परिवारों के साथ मिलकर 'आम आदमी पार्टी' का पूर्ण बहिष्कार करेंगी।

आम आदमी पार्टी का नगर निगम चुनाव में बुरी तरह से हारने का एक कारण आँगनवाड़ी की वर्कर्स और हेल्पर्स के द्वारा किया गया बहिष्कार भी था। चुनाव के बाद हार से बौखलायी केजरीवाल सरकार ने आँगनवाड़ी की ग़रीब महिलाओं से बदला निकालना शुरू कर दिया।

दिल्ली के उपमुख्यमन्त्री मनीष सिसोदिया जिसके पास शिक्षा विभाग के अलावा महिला एवं बाल विकास विभाग भी है, ने दिल्ली के खस्ताहाल पड़े सरकारी स्कूलों का कभी निरीक्षण नहीं किया, लेकिन अलग-अलग आँगनवाड़ी में जाकर निरीक्षण करना शुरू कर दिया। आँगनवाड़ी के खस्ता हालत जैसेकि खाना ख़राब आना, बच्चों का न आना, रजिस्टर में फ़र्ज़ी एण्ट्री होना, इत्यादि के लिए ग़रीब कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं को ज़िम्मेदार ठहराया गया और तीन कार्यकर्ताओं और तीन सेविकाओं को 'टर्मिनेट' करने का फ़रमान सुना दिया गया। जबकि आँगनवाड़ी में खाने में गड़बड़ी के लिए वे एनजीओ ज़िम्मेदार हैं, जिन्हें वहाँ के खाने का टेण्डर मिलता है। पिछले दिनों एक अंग्रेज़ी दैनिक 'इण्डियन एक्सप्रेस' में एक ख़बर छपी थी कि जिन एनजीओ को दिल्ली के सरकारी स्कूलों में मध्यान्तर भोजन के लिए ब्लैकलिस्ट कर दिया गया था, वे एनजीओ अब भी आँगनवाड़ी में खाना देने का काम कर रहे हैं। और इन एनजीओ का रिश्ता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर 'आम आदमी पार्टी' से जुड़े एनजीओ 'कबीर' और 'परिवर्तन' से है (इन दोनों ही एनजीओ को कई सौ करोड़ की विदेशी फ़ण्डिंग साम्राज्यवादी फ़ण्डिंग एजेंसियों से हर साल होती है और दोनों के ही खिलाफ़ भ्रष्टाचार और वित्तीय अनियमितताओं के गम्भीर आरोप हैं)! ज़ाहिर है कि अपने ही लोगों द्वारा किये गये घपले-घोटालों के लिए मनीष सिसोदिया आँगनवाड़ी की ग़रीब महिलाओं को ज़िम्मेदार ठहरा रहा है और उन्हें दिल्ली की जनता के सामने बदनाम भी कर रहा है। दूसरी ओर सुपरवाइज़र और सीडीपीओ इन महिलाओं पर दबाव डालकर रजिस्टर में फ़र्ज़ी नाम डलवाती हैं, लेकिन किसी सुपरवाइज़र या सीडीपीओ पर आज तक किसी प्रकार की कोई कार्रवाई नहीं हुई है। सरकार एक तरफ़ आँगनवाड़ी को जानबूझकर बर्बाद कर रही है और दूसरी तरफ़ प्लेस्कूलों (यहाँ भी अपने ही लोगों को) को लाइसेंस दे रही है और मनीष सिसोदिया इन सबका ज़िम्मेदार आँगनवाड़ी की ग़रीब वर्कर्स और हेल्पर्स को ठहरा रहा है। ठेकेदारों, प्रॉपर्टी डीलरों, व्यापारियों, कारख़ानेदारों की नुमाइन्दगी करने वाली इस पार्टी का असली चरित्र यही है।

सरकार की इस बदले की कार्रवाई की वजह से आँगनवाड़ी की महिलाओं में ज़बरदस्त गुस्सा भरा हुआ था। साथ ही साथ अरविन्द केजरीवाल सरकार की पिछले दो सालों की वायदा-खिलाफ़ी और धोखेबाज़ी की याद भी उन्हें थी। अपनी यूनियन के नेतृत्व में महिलाएँ आन्दोलन की राह पर चलने का मन बना रही थी।

10 जून को 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' ने आगे की योजना के लिए एक बैठक बुलायी और फ़ैसला लिया कि आगामी 24 जून को दिल्ली सचिवालय पर 1 दिन का चेतावनी प्रदर्शन किया जायेगा। 24 जून को भारी संख्या में महिलाएँ दिल्ली सचिवालय पहुँचीं। इतनी संख्या में महिलाओं को देखकर सरकार घबरा गयी और मनीष सिसोदिया के ओएसडी ने प्रतिनिधिमण्डल को बातचीत के लिए बुलाया। ओएसडी ने यूनियन को 27 जून को मनीष सिसोदिया से बातचीत का निमन्त्रण दिया।

### हड़ताल की शुरुआत

27 जून को जब भारी संख्या में महिलाएँ मनीष सिसोदिया के बँगले (हालाँकि ये ख़ुद को 'आम आदमी' कहते हैं और चुनाव से पहले इनके पार्टी के नेताओं ने बँगले, गाड़ी, सुरक्षा आदि लेने से इनकार किया था) पर पहुँचीं तो पहले पुलिस ने बैरीकेड लगा दिये और अन्दर आने से ही मना कर दिया। लेकिन जब महिलाओं का दबाव बढ़ता गया तो पाँच महिलाओं को यूनियन की अध्यक्षा शिवानी के साथ बात करने के लिए अन्दर जाने दिया गया। लेकिन सिसोदिया बात करने से ज़्यादा महिलाओं को डराने के मूड में था। जब उसे मालूम चला कि महिलाओं के साथ यूनियन की साथी शिवानी भी आयी हैं तो उसने बात करने से ही मना कर दिया। जब प्रतिनिधिमण्डल की महिलाएँ बातचीत की वीडियो रिकॉर्डिंग करने लगी तो सिसोदिया ने कहा कि तुम लोग मेरा स्टिंग ऑपरेशन करने आये हो? यूनियन द्वारा यह कहे जाने पर कि उनकी पार्टी ने ही तो इस बात का ख़ूब हल्ला मचाकर प्रचार किया था कि जब किसी सरकारी अधिकारी से बात करो तो उसकी वीडियो भी बनाओ, इस पर सिसोदिया अपना सा मुँह लेकर रह गया। यूनियन द्वारा यह बात भी रखी गयी कि इस देश का क़ानून कामगारों को यूनियन बनाने का संवैधानिक अधिकार देता है और यह अधिकार छीनने वाली आप सरकार कोई नहीं होती। जब मज़दूर सरकार का प्रतिनिधिमण्डल तय नहीं कर सकते तो केजरीवाल सरकार आँगनवाड़ी महिलाओं का प्रतिनिधिमण्डल कैसे तय कर सकती है? लेकिन सिसोदिया ने यूनियन से बात करने से साफ़ इनकार कर दिया। बात-बात पर संविधान और जनवाद की दुहाई देने वाली 'आम आदमी पार्टी' की सरकार कितने संवैधानिक और जनवादी तरीक़े से व्यवहार कर रही थी, यह दिख रहा था। सरकारों से लेकर मालिकान का ये पुराना हथकण्डा रहा है कि जो यूनियन वास्तविक तरीक़े से मज़दूरों का प्रतिनिधित्व करती है, उसे मान्यता और पहचान दो ही नहीं। मनीष सिसोदिया भी यही कर रहा था।

मनीष सिसोदिया की इस दग़ाबाज़ी से महिलाओं का रोष और बढ़ गया और अब ये केजरीवाल और सिसोदिया से आर-पार की लड़ाई के लिए तैयार थीं। प्रतिनिधिमण्डल ने बाहर आकर जब मनीष सिसोदिया की कारगुज़ारी को बयान किया तो महिलाओं का गुस्सा और बढ़ गया। और तब यूनियन ने 28 जून से हड़ताल की घोषणा कर दी, जिसका मतलब था आँगनवाड़ी सेण्टरों को पूरी तरह से बन्द करना, खाना न बाँटना और सेण्टरों पर ताले लगा देना। इसके साथ ही 30 जून को दिल्ली सचिवालय पर विराट जुटान का आह्वान किया गया।

30 जून को होने वाले प्रदर्शन को लेकर केजरीवाल सरकार में ज़बरदस्त खलबली मची हुई थी। तरह-तरह की दलाल यूनियन, धार्मिक कट्टरवादी संगठन व आम आदमी पार्टी के पिछलग्गुओं ने प्रदर्शन को समर्थन देने के बहाने आन्दोलन को ख़त्म करने की कोशिश की। लेकिन यूनियन ने इस तरह के किसी भी संगठन का समर्थन लेने से साफ़ इनकार कर दिया। 30 जून को लगभग दस हज़ार की भारी संख्या में महिलाओं ने प्रदर्शन में हिस्सेदारी की। ऐसा लग रहा था, जैसे कोई जनसैलाब उमड़ आया हो। प्रदर्शन में यूनियन ने यह फ़ैसला किया कि मुख्यमन्त्री स्वयं आकर हमसे मिलकर हमारी सारी माँगों को पूरा करें, वरना हम यहीं डटे रहेंगे और रिंग रोड जाम करेंगे। लेकिन जब मुख्यमन्त्री या सरकार का कोई प्रतिनिधि मिलने को तैयार नहीं हुआ तो महिलाओं ने रिंग रोड को चार घण्टे तक जाम रखा। उसके बाद यूनियन ने आम सहमति से यह फ़ैसला लिया कि आगामी 3 जुलाई से मुख्यमन्त्री अरविन्द केजरीवाल के बँगले पर अनिश्चितकालीन धरना शुरू किया जायेगा। साथ ही, बीच के दो दिनों में यानी 1 और 2 जुलाई को महिलाएँ अपने-अपने इलाक़ों के विधायकों का घेराव करेंगी। विधायकों के घेराव का कार्यक्रम ज़बरदस्त सफल रहा। कई जगह महिलाओं ने रोड जाम किये। और आम आदमी पार्टी के विधायकों को केजरीवाल सरकार की वायदा-खिलाफ़ी के दुष्परिणाम भुगतने की चेतावनी भी दी।

इसके बाद 3 जुलाई को हज़ारों की संख्या में आँगनवाड़ी महिलाएँ केजरीवाल के आवास के बाहर सिविल लाइन्स पहुँचीं। अभी कार्यक्रम शुरू हुए आधा घण्टा भी नहीं हुआ था कि दिल्ली पुलिस के अधिकारियों द्वारा सरकार का यह सन्देश पहुँचाया गया कि पाँच सदस्यीय प्रतिनिधिमण्डल को अन्दर भेजा जाये। जब प्रतिनिधिमण्डल अन्दर पहुँचा, जिसमें यूनियन की अध्यक्षा शिवानी भी शामिल थी, तो मुख्यमन्त्री कार्यालय के लोगों द्वारा यह कहा गया कि मुख्यमन्त्री केजरीवाल 'किसी यूनियन' से बात नहीं करेंगे। एक बार फिर केजरीवाल सरकार की मंशा

# दिल्ली आँगनवाड़ी महिलाओं का लम्बा और जुझारू संघर्ष!

(पेज 5 से आगे)

सभी महिला कामगारों के सामने साफ़ हो गयी। प्रतिनिधिमण्डल ने तय किया कि वे किसी भी वार्ता में यूनियन नेतृत्व के साथ ही हिस्सेदारी करेगी, वरना ऐसी किसी भी वार्ता का बहिष्कार करेंगी। बाहर आकर यही बात आम सभा में रखी गयी। उपस्थित सभी महिलाओं ने सर्वसम्मति से अरविन्द केजरीवाल सरकार के इस रवैये का खण्डन किया और प्रण लिया कि आने वाले दिनों में हड़ताल को और अधिक व्यापक बनाया जायेगा और केजरीवाल सरकार को उसकी वायदा-खिलाफ़ी का मुँहतोड़ जवाब दिया जायेगा। तब से यूनियन के नेतृत्व में आँगनवाड़ी महिलाओं की हड़ताल जारी है और 6 जुलाई से वे क्रमिक भूख हड़ताल पर हैं। इस पूरे घटनाक्रम से यह स्पष्ट है कि केजरीवाल सरकार यूनियन से बात न करके कामगारों से उनकी सामूहिक मोलभाव की क्षमता को ही छीनना चाहती है, जोकि न सिर्फ़ ग़ैर-क़ानूनी है, बल्कि संवैधानिक मूल्यों के भी खिलाफ़ है। यूनियन के नेतृत्व से अलग कामगारों को अरक्षित स्थिति में रखकर केजरीवाल-सिसोदिया गुट आँगनवाड़ी महिलाओं को प्रताड़ित और आतंकित करना चाहता था और उन पर हड़ताल ख़त्म करने का दबाव बनाना चाहता था। और यूनियन की उपस्थिति में इन लोगों के लिए ऐसा कर पाना नामुमकिन था। 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' से केजरीवाल सरकार के बात न करने का दूसरा कारण यह था कि 2015 की हड़ताल के दौरान इसी यूनियन के साथ केजरीवाल सरकार का लिखित समझौता हुआ था। केजरीवाल-सिसोदिया गिरोह यह जानता था कि अगर वार्ता में यूनियन शामिल होगी तो वह उसे 2015 के लिखित समझौते कि वायदा-खिलाफ़ी को लेकर घेरेगी और जवाब तलब करेगी। केजरीवाल-सिसोदिया गिरोह इस बात को भी अच्छी तरह समझता था कि जो यूनियन 2015 में भी बिना लिखित समझौते के नहीं मानी थी, वह इस बार भी लिखित में ही मानदेय बढ़ोतरी की माँग मनवायेगी। और यह केजरीवाल-सिसोदिया को करना नहीं था।

3 जुलाई को ही हड़ताल को संचालित करने के लिए एक 25 सदस्यीय समिति का गठन किया गया। सामूहिक और जनवादी तरीक़े से निर्णय लेने की प्रक्रिया शुरू की गयी। स्ट्राइक फ़ण्ड भी बनाने का निर्णय लिया गया। आँगनवाड़ी सेण्टरों को बन्द करवाने के लिए महिलाओं की ही पिकेटिंग टीमों और हड़ताली दस्तों का गठन किया गया। हड़ताल को सफल बनाने में इन हड़ताली दस्तों का ख़ासा योगदान रहा है। हड़ताली दस्तों की महिलाओं ने अभूतपूर्व साहस और बहादुरी का परिचय दिया। यूँ कहें तो इन हड़ताली दस्तों ने हड़ताल की रीढ़ की हड्डी का काम किया। इसके अलावा हड़ताल-स्थल पर वालण्टियर्स की कोर टीम ने अनुशासन और व्यवस्था बनाये रखने में महती भूमिका अदा की। हड़ताल की पाठशाला में महिला कामगारों की पहलक़दमी न सिर्फ़ खुली बल्कि नयी उड़ानें भरने लगी। हड़ताल के दौरान कई बहनों ने कई गीत, कविताएँ और नज़्में भी रचीं। इस तरीक़े से मेहनतकश स्त्रियों के सर्जनात्मकता के नये आयाम भी सामने आये। साथ ही, यूनियन की तरफ़ से दिल्ली के आम नागरिकों के नाम परचा निकालने का निर्णय भी लिया गया और यह तय किया गया कि इससे लेकर बसों और रिहाइशी इलाक़ों में व्यापक अभियान चलाया जायेगा।

***हड़ताल तोड़ने के लिए दलाल यूनियन केजरीवाल के साथ!***

जब आँगनवाड़ी की महिलाओं की यह जुझारू हड़ताल पूरी दिल्ली में फैल गयी और लगभग सभी आँगनवाड़ियों में काम पूरी तरह ठप्प हो गया, तब से तरह-तरह के बिचौलिये, दलाल और मज़दूरों के साथ ग़द्दारी करने का रिकॉर्ड बना चुकी दलाल यूनियनें अपने काम में लग गयीं और केजरीवाल का साथ देने लगीं।

इन दलाल यूनियनों में सबसे अग्रणी नाम सीटू की कमला वाली यूनियन का है। सीटू, जिनका इतिहास मज़दूरों के साथ ग़द्दारी का है, बंगाल से लेकर केरल तक जिनकी माता चुनावी पार्टी माकपा मज़दूरों पर गोलियाँ बरसा चुकी है, जो गुण्डों से पिटवाने और मालिकों का खुल्ला साथ देने के लिए बदनाम है, वह भला दिल्ली में आँगनवाड़ी की महिलाओं से ग़द्दारी करने और उनकी हड़ताल तुड़वाने में पीछे कैसे रह सकती थी! कमला जो पहले भी 2015 में हड़ताल तुड़वाने के लिए आयी थी, लेकिन महिलाओं ने उसे भगा दिया था, अब वह तरह-तरह की चालों के ज़रिये यह काम करने लगी। पहले वह यूनियन को समर्थन देने के बहाने हड़ताल में घुसने की कोशिश कर रही थी, लेकिन उसकी यह चाल जब क़ामयाब नहीं हुई तो वह यूनियन के साथियों के खिलाफ़ कुत्सा-प्रचार करने में जुट गयी। इससे भी जब काम नहीं बना तो कमला और सीटू ने अपना नाम बदलकर 'स्वतन्त्र आँगनवाड़ी कर्मचारी और सहायिका संघ' के नाम से पर्चा निकाला और महिलाओं में भ्रम फैलाने का काम किया और 10 जुलाई को मनीष सिसोदिया के आवास को घेरने का आह्वान किया। जबकि यूनियन पहले ही मनीष सिसोदिया से उसके घर पर मुलाक़ात करने गयी थी, पर वहाँ बात न बन पाने के कारण ही हड़ताल का निर्णय लिया गया था। ज़ाहिर है कि कमला की यह चाल हड़ताल तोड़ने की ही थी।

लेकिन कमला और सीटू की ग़द्दारी का पर्दाफ़ाश आँगनवाड़ी की महिलाओं ने दमदार तरीक़े से किया। सिसोदिया के घर पर कमला अपनी 3 चमचियों के साथ ही पहुँची और उसका प्रदर्शन पूरी तरह से 'फ़्लॉप शो' साबित हुआ।

दूसरा एक दलाल रामकरण है, जिसने 2015 में ही आँगनवाड़ी के साथ शुरू हुए आशा वर्कर्स के आन्दोलन को डुबाने का काम किया था। इस हड़ताल की शुरुआत में रामकरण खुलकर केजरीवाल सरकार और आम आदमी पार्टी की पैरवी कर रहा था और महिलाओं के सामने बड़ी-बड़ी डींगें हाँक रहा था कि अगर वे 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' को छोड़कर उसके साथ आ जायें तो वह उनका केजरीवाल के साथ समझौता करवा देगा और सारी माँगें मनवा देगा। अब वह यह झूठ फैला रहा है कि शिवानी की वजह से ही माँगें पूरी नहीं हो रही हैं। रामकरण, जिसने आशा वर्कर्स के साथ ग़द्दारी की और अब वही काम वह आँगनवाड़ी की महिलाओं के साथ करने की कोशिश कर रहा था, को एक दफ़ा फिर महिलाओं ने माक़ूल जवाब दिया।

सोचने वाली बात तो यह है कि एक तरफ़ केजरीवाल और सिसोदिया हमारी यूनियन से बात करने को तैयार नहीं होते हैं, जिनके साथ आँगनवाड़ी की महिलाएँ हैं, लेकिन उन सारी दलाल यूनियनों से बात करने को राज़ी हैं जिनके साथ कोई नहीं है। ऊपर से यह "केजरीवाल और सिसोदिया गैंग" झूठी अफ़वाहें फैलाने में माहिर है। हद तो तब हो गयी जब सिसोदिया ने 5 जुलाई को एक फ़र्ज़ी यूनियन 'दिल्ली आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स एसोसिएशन', जिसमें सुपरवाइज़र और सीडीपीओ शामिल थे, के साथ मिलकर 'मानदेय बढ़ाने की' और 'हड़ताल ख़त्म होने' की घोषणा भी कर दी। इसी से इस दोमुँही केजरीवाल सरकार और आम आदमी पार्टी के चरित्र का पता चलता है। और यहीं से इनकी सरकार के झूठ और फ़र्ज़ीवाड़े का सिलसिला भी शुरू हो जाता है।

लेकिन इस फ़र्ज़ी यूनियन से फ़र्ज़ी समझौते के बाद भी आँगनवाड़ी महिलाओं की हड़ताल ख़त्म नहीं हुई, बल्कि और ज़्यादा व्यापक और मज़बूत बनने लगी। केजरीवाल सरकार की समझ में आ गया था कि फ़र्ज़ी यूनियन बनाकर समझौता करने वाला दाँव उल्टा पड़ गया है। अब हड़ताल तोड़ने के लिए वह नये फ़र्ज़ीवाड़े की तलाश में थी। इस फ़र्ज़ीवाड़े को अंजाम देने की लिए अरविन्द केजरीवाल सरकार ने अपनी पार्टी के विधायकों को ही काम पर लगाया। विधायकों से कहा गया कि अपने-अपने इलाक़ों की आँगनवाड़ी महिलाओं से बात करके आन्दोलन को ख़त्म कराया जाये। लेकिन यह फ़ार्मुला बुरी तरह से फेल हो गया। जब इससे भी बात नहीं बनी, तो 15 जुलाई को अरविन्द केजरीवाल ने अपने ही आवास पर अपनी पार्टी के विधायकों, एनजीओ के चेले-चपाटों, सुपरवाइज़र-सीडीपीओ और कुछ ग़द्दारों-चमचों के साथ मिलकर यह घोषणा कर दी कि जल्द ही मानदेय बढ़ाया जायेगा। यह फ़र्ज़ीवाड़े में नम्बर वन इनकी सरकार का नया फ़र्ज़ीवाड़ा था। इस फ़र्ज़ीवाड़े का जवाब आँगनवाड़ी की महिलाओं ने धरना-स्थल पर 17 जुलाई को एक बड़ी प्रेस कांफ़्रेंस करके दिया। प्रेस कांफ़्रेंस में बड़ी संख्या में मीडियाकर्मियों ने शिरकत की। हज़ारों की संख्या में महिलाएँ भी उपस्थित थीं। उस दिन बारिश भी जमकर हो रही थी, लेकिन महिलाओं के हौसले बुलन्द थे और केजरीवाल सरकार के फ़र्ज़ीवाड़े के प्रति रोष भी ज़बरदस्त था। प्रेस कांफ़्रेंस में यूनियन की अध्यक्षा शिवानी द्वारा न सिर्फ़ केजरीवाल सरकार के आँगनवाड़ी महिलाओं के साथ फ़र्ज़ीवाड़े की पोल-पट्टी खोली गयी, बल्कि आईसीडीएस स्कीम (समेकित बाल विकास योजना) में अरविन्द केजरीवाल सरकार और इनकी पार्टी से जुड़े एनजीओ के भ्रष्टाचार को भी बेपर्द किया गया। प्रेस कांफ़्रेंस के बाद महिलाओं में जोश और उत्साह और बढ़ गया।

केजरीवाल सरकार इससे काफ़ी बौखला गयी थी। मानदेय बढ़ोतरी की नक़ली घोषणा इसके गले की फाँस बन गयी थी। और दूसरी तरफ़ हड़ताल ख़त्म होने का नाम नहीं ले रही थी, बल्कि हर बीतते दिन के साथ और आगे बढ़ रही थी। इसके बाद 18 जुलाई को यूनियन द्वारा घोषणा की गयी कि अगर आने वाले 3 दिनों के भीतर अरविन्द केजरीवाल सरकार ने यूनियन से बातचीत नहीं की और मानदेय बढ़ोतरी को लेकर कोई लिखित आश्वासन यूनियन को नहीं दिया तो बवाना विधान सभा क्षेत्र में होने वाले उपचुनाव में आँगनवाड़ी महिलाओं द्वारा अरविन्द केजरीवाल सरकार और आम आदमी पार्टी का पूर्ण सक्रिय बहिष्कार किया जायेगा और बवाना की जनता को आम आदमी पार्टी की सरकार के फ़र्ज़ीवाड़े और फ़रेब से अवगत कराया जायेगा। हालाँकि आज दिल्ली का बच्चा-बच्चा जानता है कि अरविन्द केजरीवाल की सरकार कितनी बड़ी फ़्रॉड और नौटंकीबाज़ है! जब 3 दिन का समय बीतने के बाद भी अरविन्द केजरीवाल सरकार द्वारा बातचीत का कोई प्रस्ताव नहीं भेजा गया तो 21 जुलाई से बड़े ज़ोर-शोर के साथ बवाना में आम आदमी पार्टी की सरकार के खिलाफ़ बहिष्कार अभियान की शुरुआत की गयी। इस सम्बन्ध में बवाना की जनता के नाम यूनियन की तरफ़ से एक परचा भी निकाला गया, जिसमें आप सरकार के फ़र्ज़ीवाड़े की पोल-पट्टी खोली गयी। धरना-स्थल से रोज़ महिलाओं की टीम बवाना जाकर बहिष्कार अभियान चलाने का काम करने लगी। गौरतलब है कि बवाना में आम आदमी पार्टी के विधायक वेद प्रकाश के भाजपा में शामिल होने के बाद वहाँ की सीट ख़ाली पड़ जाने के कारण उपचुनाव की घोषणा की गयी थी। यह इस बात का ही सबूत है कि तमाम चुनावबाज़ पार्टियों में नाम और चुनाव-चिन्ह की भिन्नता के अलावा और कुछ भी अलग नहीं है। सबका काम असल में जनता को लूटना-खसोटना ही है।

इसके बाद 22 जुलाई को हड़ताल के दबाव और बवाना में बहिष्कार अभियान के डर के चलते अरविन्द केजरीवाल को अपने ट्विटर हैण्डल से ट्वीट करके कहना पड़ा कि आँगनवाड़ी वर्करों का मानदेय बढ़ाकर 9678

# दिल्ली आँगनवाड़ी महिलाओं का लम्बा और जुझारू संघर्ष!

(पेज 4 से आगे)

रुपये और हेल्परों का मानदेय बढ़ाकर 4839 रुपये कर दिया जायेगा। लेकिन यह कब से किया जायेगा, इसके बारे में कुछ भी नहीं बताया गया था। यह ट्वीट केजरीवाल ने आँगनवाड़ी कर्मचारियों की 25 दिन से चल रही हड़ताल के बाद किया था, जिसका नेतृत्व 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' कर रही थी। इस हड़ताल के कारण पिछले 25 दिनों से आँगनवाड़ियों का काम दिल्ली में पूरी तरह से ठप्प हो गया था। इसी दबाव में आकर केजरीवाल सरकार ने यह ट्वीट किया था। लेकिन इस ट्वीट को लेकर अरविन्द केजरीवाल के घर के बाहर धरने पर बैठी हज़ारों औरतों को कोई भरोसा नहीं था। सभी के ज़ेहन में एक ही बात थी - जब यूनियन के साथ 2015 में किये गये लिखित समझौते का केजरीवाल सरकार ने 2 वर्षों तक नंगा उल्लंघन किया जो कि एक क़ानूनी दस्तावेज़ था, तो फिर एक ट्वीट पर कैसे भरोसा कर लिया जाये। यूनियन के नेतृत्व की स्पष्ट राय थी कि सरकार और सरकारी काम ट्विटर पर नहीं चलते हैं। अगर केजरीवाल सरकार सच बोल रही थी तो फिर उसे या तो केजरीवाल के ही घर के बाहर यूनियन के नेतृत्व में धरने पर 25 दिनों से बैठी हज़ारों महिलाओं के साथ आकर लिखित समझौता करना चाहिए या फिर उसे एक सरकारी आज्ञा अथवा अधिसूचना जारी करके स्पष्ट तौर पर बताना चाहिए कि ये बढ़े हुए मानदेय कब से लागू होंगे। साथ ही इस क़रारनामे अथवा सरकारी आज्ञा में इस बात का वचन भी दिया जाना चाहिए कि 25 दिनों से हड़ताल पर बैठी आँगनवाड़ी वर्करों व हेल्परों को बाद में हड़ताल के लिए निशाना नहीं बनाया जायेगा, उन्हें बहानेबाज़ी करके किसी भी प्रकार से परेशान या दण्डित नहीं किया जायेगा। इन वायदों के बिना और यूनियन से समझौते अथवा सरकारी आज्ञा अथवा गजेट जारी किये बिना हड़ताल समाप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। यूनियन पदाधिकारियों व वर्करों-हेल्परों का कहना था कि जब केजरीवाल सरकार ने दो वर्षों तक एक क़ानूनी समझौते का पालन नहीं किया तो हम एक ट्वीट पर भरोसा कैसे कर सकते हैं? केजरीवाल सरकार जिस क्षण ऐसा समझौता करेगी अथवा सरकारी आज्ञा या गजेट जारी करेगी, जिसमें उपरोक्त शर्तों का उल्लेख किया गया हो, उसी समय हड़ताल समाप्त कर दी जायेगी।

इस बिगुल संवाददाता से बातचीत में 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' की अध्यक्षा शिवानी ने कहा, "पिछले कुछ दिनों में हमारी हड़ताल को तोड़ने के लिए केजरीवाल सरकार ने हरसम्भव प्रयास किया है। सुपरवाइज़रों व आईसीडीएस स्कीम अधिकारियों की नक़ली यूनियन बनाकर उसके साथ समझौते की बात प्रेस में फैलाना, जब वह भी काम नहीं आया तो अपने ही पार्टी के कार्यकर्ताओं व एनजीओ के लोगों के साथ दूसरी फ़र्ज़ी यूनियन बनाकर समझौते की अफ़वाह फैलाने जैसी हास्यास्पद कार्रवाइयों के ज़रिये हमारी हड़ताल को तोड़ने का प्रयास किया गया है। लेकिन जब ऐसा करने में केजरीवाल सरकार कामयाब नहीं हुई तो अब हड़ताल के भारी दबाव में आकर मुख्यमन्त्री केजरीवाल ने यह ट्वीट किया है। लेकिन अगर केजरीवाल सरकार ने हमारी यूनियन के साथ ख़ुद मिलकर किये गये लिखित समझौते का दो वर्षों तक उल्लंघन किया, जिसके पालन के लिए वह क़ानूनी तौर पर बाध्य है, तो फिर हम महज़ एक ट्वीट पर भरोसा करके अपनी हड़ताल ख़त्म कैसे कर दें? अगर केजरीवाल सरकार अपने मुख्यमन्त्री के इस ट्वीट में की गयी घोषणा को लेकर गम्भीर है, तो फिर उसे मुख्यमन्त्री के घर के बाहर ही बैठी हज़ारों आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं व सहायिकाओं से आकर लिखित समझौता करना चाहिए या फिर एक सरकारी आज्ञा या गजेट जारी करके स्पष्ट करना चाहिए कि मानदेय बढ़ोत्तरी कितनी होगी और किस तारीख़ से लागू होगी और साथ ही उसे यह लिखित घोषणा भी करनी चाहिए कि किसी भी हड़ताली कर्मचारी को बाद में निशाना नहीं बनाया जायेगा या उसे नाजायज़ तरीक़े से दण्डित या परेशान करने का प्रयास नहीं किया जायेगा। यूनियन के साथ किये गये ऐसे लिखित क़रारनामे अथवा सरकारी अधिसूचना या गजेट के बिना हम अपनी हड़ताल समाप्त करने की भूल नहीं करेंगे। सरकार की ओर से ऐसे संवाद के बिना हम कभी सुनिश्चित नहीं हो सकते कि यह हमारी हड़ताल को तोड़ने का एक नया प्रयास नहीं है। सरकारें ट्विटर पर नहीं चलती हैं। जिस सरकार के लिए क़ानूनी समझौते का कोई मूल्य नहीं है, उसके लिए एक ट्वीट का क्या मूल्य हो सकता है? इसलिए सरकार को आधिकारिक प्रक्रिया का पालन करते हुए उस यूनियन से समझौता करना चाहिए जिसके नेतृत्व में हज़ारों आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों ने 25 दिन से यह हड़ताल जारी रखी है, अथवा, यदि उन्हें डर लगता है, तो वे एक सरकारी अधिसूचना या गजेट जारी कर दें जिसमें उपरोक्त शर्तों का स्पष्ट शब्दों में ज़िक्र हो। इसके बिना हड़ताल समाप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

अरविन्द केजरीवाल सरकार के इस नए फ़र्ज़ीवाड़े के जवाब में 24 जुलाई को 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' के नेतृत्व में हज़ारों आँगनवाड़ी वर्कर्स व हेल्पर्स ने रामलीला मैदान से जन्तर-मन्तर तक अपनी महारैली का आयोजन किया गया। रामलीला मैदान से जन्तर-मन्तर तक की यह रैली एक ऐतिहासिक रैली थी। यह आँगनवाड़ी महिलाओं की दिल्ली के दिल में दस्तक थी। इस महा रैली में 10000-12000 आँगनवाड़ी कर्मियों ने शिरकत की। जन्तर-मन्तर पर एक प्रेस कांफ्रेंस का भी आयोजन किया गया। मीडियाकर्मियों से बातचीत के दौरान यूनियन के सदस्यों ने बताया कि हड़ताल को ख़त्म करवाने के सारे प्रयासों के असफल होने के बाद केजरीवाल सरकार ने दबाव में आकर दो दिनों पहले यह घोषणा की कि आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का मानदेय बढ़ाकर 9678 रुपये और सहायिकाओं का मानदेय बढ़ाकर 4839 रुपये कर दिया जायेगा। लेकिन इस क़दम की ज़िम्मेदारी केजरीवाल सरकार ने उपराज्यपाल के ऊपर डाल दी है, जबकि केजरीवाल सरकार हमेशा से यह कहती रही है कि पुलिस, ज़मीन व न्याय-व्यवस्था के अतिरिक्त दिल्ली सरकार किसी भी मामले में उपराज्यपाल पर निर्भर नहीं है और वह हर फ़ैसला उपराज्यपाल के हस्तक्षेप या आज्ञा के बिना ले सकती है। ऐसे में, वह मानदेय बढ़ाने के लिए उपराज्यपाल की आज्ञा की बात क्यों कर रही है? क्या अपने प्रचार पर 1000 करोड़ रुपये से भी ज़्यादा धन ख़र्च करने का फ़ैसला केजरीवाल सरकार ने उपराज्यपाल के पास फ़ाइल भेजकर किया था? या अपने विधायकों का वेतन ढाई लाख करने से पहले केजरीवाल सरकार ने उपराज्यपाल से पूछा था? अगर नहीं, तो हमारा मानदेय बढ़ाने पर यह नौटंकी क्यों? इसी से पता चलता है कि इन घोषणाओं पर तब तक भरोसा नहीं किया जा सकता है, जब तक कि केजरीवाल सरकार मानदेय की बढ़ोत्तरी और यह बढ़ोत्तरी कब से लागू होगी, उसकी तिथि किसी सरकारी अधिसूचना अथवा गजेट में जारी नहीं करती। यूनियन प्रवक्ता वृशाली ने कहा कि हड़ताल आज ही ख़त्म की जा सकती है, बशर्ते कि केजरीवाल सरकार 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' को लिखित क़रारनामा देकर यह वायदा करे कि मानदेय बढ़ाया जायेगा, उक्त तिथि से बढ़ाया जायेगा और किसी भी हड़ताली वर्कर या हेल्पर को बाद में बदले की भावना से सताया नहीं जायेगा। लेकिन केजरीवाल सरकार उसी यूनियन से डरी हुई है और बात करने को तैयार नहीं है जिससे उसने 2015 में लिखित समझौता किया था। इसका मूल कारण यह है कि केजरीवाल सरकार की मज़दूर-विरोधी नीति है जो कि उसे यूनियनों को मान्यता देने से रोकती है।

प्रेस कांफ्रेंस के दौरान यूनियन अध्यक्षा शिवानी ने कहा, "कई लोग सोच रहे होंगे कि केजरीवाल सरकार द्वारा वर्करों व हेल्परों का मानदेय बढ़ाने की घोषणा के बाद भी यूनियन हड़ताल को ख़त्म क्यों नहीं कर रही है। आज हम हज़ारों की संख्या में रामलीला मैदान से जन्तर-मन्तर चलकर मीडियाकर्मी साथियों को यही बताने आये हैं। हमसे 2015 में स्वयं मुख्यमन्त्री केजरीवाल ने एक क़ानूनी लिखित क़रारनामा करके यह वायदा किया था कि हमारा मानदेय बढ़ा दिया जायेगा, इसके अलावा छह माँगें भी उन्होंने लिखित तौर पर स्वीकार की थीं। लेकिन इस क़ानूनी तौर पर बाध्यताकारी क़रारनामे के बावजूद 2 वर्षों तक हमसे धोखा किया गया और क़रारनामे को लागू नहीं किया गया। अन्त में थककर हमें हड़ताल पर जाना पड़ा। लेकिन केजरीवाल सरकार ने अपना मज़दूर-विरोधी रवैया दिखलाते हुए यूनियन से बात करने से ही इंकार कर दिया और हड़ताल ख़त्म करवाने के लिए हर प्रकार का फ़र्ज़ीवाड़ा किया, जैसे कि सुपरवाइज़र, अधिकारियों, एनजीओपन्थियों या अपनी ही आम आदमी पार्टी के कार्यकर्ताओं को लेकर नक़ली यूनियनें बनाना और उनसे फ़र्ज़ी समझौतों की अफ़वाहें फैलाना। जब ये तमाम चालें नाकामयाब हो गयीं, तो केजरीवाल ने पहले ट्वीट किया और फिर सिसोदिया ने प्रेस सम्मलेन कर पत्रकारों को बताया कि मानदेय में बढ़ोत्तरी कर दी जायेगी। अब आप ही बतायें कि हमने 27 दिनों से धूप, बारिश, गर्मी में यह हड़ताल और धरना जारी रखा है, तो क्या एक ट्वीट या प्रेस बयान के आधार पर हम इसे ख़त्म कर देंगे? जिस सरकार के लिए क़ानूनी क़रारनामे का कोई मूल्य नहीं है, उसके मुख्यमन्त्री के ट्वीट या उपमुख्यमन्त्री के प्रेस बयान का क्या मूल्य हो सकता है? हम क्यों न मानें कि उपराज्यपाल के पाले में बॉल इसलिए डाल दी गयी है, ताकि हमारी हड़ताल ख़त्म करवायी जा सके? इसलिए हम दो सूरत में ही हड़ताल ख़त्म करेंगे : या तो सरकार यूनियन से बात करके लिखित क़रारनामे में वायदा करे कि बढ़ा हुआ मानदेय इस तिथि से लागू होगा और किसी भी हड़ताली कर्मचारी को सताया नहीं जायेगा; या फिर, वह एक सरकारी गजेट या अधिसूचना जारी करे, जिनमें उपरोक्त शर्तों का ज़िक्र हो। हम इस खुले मंच से और मीडियाकर्मी साथियों के ज़रिये सारे दिल्लीवासियों को बता देना चाहते हैं कि हड़ताल करना हमारा शौक़ नहीं है; मगर 5000 या 2500 रुपये में घर नहीं चल सकता। हम केजरीवाल सरकार पर भरोसा नहीं करते, क्योंकि पिछले ढाई साल में हमें धोखे, झूठे वायदों और खोखली घोषणाओं के अलावा कुछ नहीं मिला है। हम आज इसी वक़्त हड़ताल ख़त्म करने को तैयार हैं, अगर केजरीवाल सरकार हमारी यूनियन के साथ लिखित समझौता करे। लेकिन उसके बिना हमें सरकारी अधिसूचना या गजेट का इन्तज़ार करना ही होगा। दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँककर पीता है। यह सच है कि केजरीवाल सरकार का दम्भ टूटा है, लेकिन अभी पूरी तरह से नहीं टूटा है। वह यूनियन से इस क़दर डरी हुई है कि उसका सामना करने की उसकी हिम्मत नहीं है। इसीलिए वह बन्द कमरों में ही सारे काम कर रही है। इसके बचे-खुचे दम्भ को भी यूनियन तोड़ देगी और बवाना उपचुनाव में आम आदमी पार्टी के उम्मीदवार का आँगनवाड़ी वर्करों व हेल्परों द्वारा पूर्ण सक्रिय बहिष्कार तब तक जारी रहेगा, जब तक कि केजरीवाल सरकार यूनियन से बात नहीं करती। पिछले दो दिनों से सैकड़ों आँगनवाड़ी महिलाओं ने बवाना जाकर आम आदमी पार्टी और उसकी सरकार का ज़बरदस्त भण्डाफोड़ किया है। यह भण्डाफोड़ अभियान तब तक जारी रहेगा, जब तक कि यूनियन को डिलेजिटिमाइज़ करने की केजरीवाल सरकार की साज़िश ख़त्म नहीं होती और सरकार यूनियन से वार्ता में नहीं उतरती।"

यूनियन की लीडिंग कमेटी की सदस्या हुमा क़ाज़ी ने बिगुल संवाददाता से बातचीत में बताया कि "वही मनीष सिसोदिया जो कि 27 जून को आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं के प्रतिनिधिमण्डल से बात करने या मानदेय बढ़ाने की माँग को सुनने को भी तैयार नहीं थे, वे दो दिन पहले प्रेसकर्मियों के सामने घड़ियाली आँसू बहा रहे थे कि हम बेचारी आँगनवाड़ीकर्मियों को कितना कम मानदेय मिलता है। यह नौटंकी किसी को मूर्ख नहीं बना सकती। अगर आपका दिल इतना ही जार-जार था,

(पेज 6 पर जारी)

# दिल्ली आँगनवाड़ी महिलाओं का लम्बा और जुझारू संघर्ष!

(पेज 5 से आगे)

तो पिछले दो वर्षों में अपनी सरकार द्वारा किया गया वायदा पूरा क्यों नहीं किया? यूनियन के साथ वार्ता क्यों नहीं की? अपने सुपरवाइज़रों व सीडीपीओ अधिकारियों द्वारा हमें डराने, धमकाने और यहाँ तक कि हम पर हमला करवाने की कोशिशें क्यों कीं? सच यह है कि हमारी अभूतपूर्व रूप से सफल हड़ताल को तुड़वाने का केजरीवाल सरकार का हर प्रयास असफल रहा। 95 प्रतिशत आँगनवाड़ियाँ बन्द हैं। इसके भारी दबाव में आकर केजरीवाल सरकार ने अपनी हार को स्वीकार किया है और मानदेय बढ़ोत्तरी का दावा किया है। लेकिन अब दावों और वादों का वक़्त बीत चुका है। हाथ कंगन को आरसी क्या और पढ़े-लिखे को फारसी क्या। जब हमसे लिखित क़रारनामा किया जायेगा या सरकारी अधिसूचना जारी हो जायेगी, तो ही हम हड़ताल ख़त्म करेंगे।"

24 जुलाई की महारैली ने आँगनवाड़ी महिलाओं की हड़ताल में नयी ऊर्जा और उत्साह का संचार कर दिया। ट्वीट के फ़र्ज़ीवाड़े के बाद इतनी बड़ी रैली अरविन्द केजरीवाल सरकार के लिए किसी दुस्वप्न से कम नहीं थी। दिल्ली सरकार के मन्त्रिमण्डल में खलबली मची हुई थी। अब एक नये फ़र्ज़ीवाड़े का वक़्त आ चुका था। और आँगनवाड़ी हड़ताल के एक माह पूरे होने पर केजरीवाल सरकार ने एक नया फ़र्ज़ीवाड़ा शुरू कर भी दिया। वह ऐसा जता रही थी कि केजरीवाल के घर के बाहर बैठी हज़ारों आँगनवाड़ी महिलाकर्मी वास्तव में आँगनवाड़ी कर्मचारी हैं ही नहीं! कुछ पत्रकारों ने जब केजरीवाल के मुख्यमन्त्री कार्यालय से पूछा कि उनकी सरकार मानदेय बढ़ोत्तरी पर सरकारी अधिसूचना क्यों नहीं ला रही है या फिर वह यूनियन से समझौता क्यों नहीं कर रही है, तो उनके सचिव ने जवाब दिया कि वास्तव में जो दस हज़ार आँगनवाड़ी कर्मचारी केजरीवाल के निवास के बाहर बैठे हैं, वे आँगनवाड़ी कर्मचारी हैं ही नहीं, वे तो किसी राजनीतिक षड्यन्त्र के तहत पैसे देकर बुलाई गयी औरतें हैं। इस बयान से केजरीवाल सरकार और आम आदमी पार्टी किस स्तर तक नीचे गिर सकती है, यह उसने दिखला दिया है। हज़ारों औरतें जो कि 5 हज़ार या ढाई हज़ार रुपये महीने पर दिल्ली की 11 हज़ार आँगनवाड़ियों में खटती हैं, उन्हें एक झटके में ही केजरीवाल सरकार ने भाड़े पर बुलाई गयी औरतें बता दिया। असलियत यह थी कि केजरीवाल सरकार की मंशा में खोट थी और इसीलिए वह 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' से बात करने में घबरा रही थी। एक तरफ़ तो वह एक माह से धरने पर बैठी हज़ारों औरतों को कर्मचारी मानने से और उनकी यूनियन को मान्यता देने से इंकार कर रही थी, और दूसरी ओर वह अपने ही पार्टी के गुण्डों, एनजीओ के भ्रष्टाचारियों और आँगनवाड़ी योजना में जमकर हेराफेरी करने वाली सुपरवाइज़रों और आईसीडीएस अधिकारियों को अपने कमरों में बुला रही थी, और उन्हें ही फ़र्ज़ी यूनियन के तौर पर स्थापित करके, उनसे ही समझौता कर ले रही थी। इससे भी मज़ाक़िया बात यह थी कि वह इसी फ़र्ज़ी यूनियन से बाद में अपने आपको मानदेय बढ़ोत्तरी की ट्विटर घोषणा पर धन्यवाद ज्ञापन भी करवा रही थी! और यह सब तब जबकि हज़ारों आँगनवाड़ी महिलाकर्मी गर्मी, धूप, बारिश के बावजूद केजरीवाल के घर के ठीक बाहर धरना दे रही थीं। इस नये फ़र्ज़ीवाड़े का जवाब 28 जुलाई को हज़ारों कर्मचारियों ने मीडियाकर्मियों के समक्ष अपने आईकार्ड लहराकर बताया कि वे आँगनवाड़ी कर्मचारी हैं और अगर मुख्यमन्त्री केजरीवाल और उपमुख्यमन्त्री सिसोदिया को रत्ती-भर भी शर्म है तो उन्हें ऐसे झूठ, फ़रेब और फ़र्ज़ीवाड़े के लिए चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए।

'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' ने बयान जारी कर कहा, "केजरीवाल ने यह नया बयान देकर फ़र्ज़ीवाड़े और झूठ-फ़रेब का नया कीर्तिमान स्थापित कर दिया है। अगर बाहर बैठी औरतें आँगनवाड़ी की कर्मचारी नहीं हैं, तो दिल्ली की 11 हज़ार आँगनवाड़ियाँ अभी तक बन्द क्यों हैं? अगर आँगनवाड़ी की औरतें हड़ताल पर नहीं हैं, तो ये आँगनवाड़ियाँ चल क्यों नहीं रही हैं? अरविन्द केजरीवाल, मनीष सिसोदिया और उनके एनजीओपन्थी लग्गू-भग्गू चाहे जितना भी झूठ बोल लें, आज मीडियाकर्मियों ने इनकी सच्चाई को देख लिया है। उन्होंने स्वयं इन हज़ारों महिलाओं के आईकार्ड, नियुक्ति पत्र आदि जाँचें और पाया कि केजरीवाल के घर के बाहर बैठी हज़ारों महिलाएँ वास्तव में आँगनवाड़ी की हड़ताल पर बैठी कार्यकर्ताएँ व सहायिकाएँ ही हैं। अब मीडियाकर्मियों को केजरीवाल सरकार से इन सफ़ेद झूठ के बारे में पूछना चाहिए। सच तो यह है कि केजरीवाल सरकार ने जानबूझकर मानदेय बढ़ोत्तरी की बात उपराज्यपाल पर डाल दी है, ताकि हड़ताल ख़त्म हो सके। हड़ताल के कारण इनके हाथ-पाँव फूल गये हैं। यूनियन का नाम सुनते ही इनकी रातों की नींदें उड़ जाती हैं। लाख झूठ, अफ़वाहबाज़ी, धोखेबाज़ी, फ़र्ज़ी यूनियनें बनाने, धमकियाँ दिलवाने और आम आदमी पार्टी के टुच्चे गुण्डों से हमले करवाने के बावजूद वे इस अभूतपूर्व और ऐतिहासिक हड़ताल को तोड़ने में नाकाम रहे हैं। नतीजतन, वे ऐसी तरक़ीबों पर उतर आये हैं, जिनका इस्तेमाल उठाईगीर, सेंधमार, चोर और उचक्के करते हैं। उन्हें शर्म आनी चाहिए कि दिल्ली की जनता ने उन्हें भारी बहुमत से सत्ता दी, और उन्होंने दिल्ली की जनता को कुछ नहीं दिया। पिछले तीन वर्षों में हर विभाग के मज़दूरों व कर्मचारियों को देर से वेतन मिलना, वेतन न मिलना, झूठे वायदे करना, आदि जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आँगनवाड़ी कोई अपवाद नहीं है। लेकिन आँगनवाड़ी महिलाओं ने तय कर लिया है कि बढ़े हुए मानदेय का यूनियन के साथ लिखित समझौता या फिर सरकार गजेट या अधिसूचना के बिना हड़ताल जारी रहेगी। केजरीवाल व सिसोदिया के ऐसे सस्ते और सड़कछाप झूठों से हड़ताल नहीं टूटने वाली।"

हज़ारों आँगनवाड़ी महिलाओं का स्पष्ट तौर पर मानना था कि केजरीवाल सरकार को सरकार चलाने का एबीसी भी नहीं आता। वरना आँगनवाड़ी की महिलाकर्मियों से बैर लेने की मूर्खता वह नहीं करती। महिलाकर्मियों ने अभी तो अपने बहिष्कार से केवल एमसीडी चुनावों में आम आदमी पार्टी को हरवाया है। बवाना उपचुनाव में भी अब आम आदमी पार्टी को मज़ा चखाया जायेगा। आँगनवाड़ी महिलाओं के यूनियन नेतृत्व में चल रहे सक्रिय बहिष्कार अभियान को ज़बरदस्त सफलता मिल भी रही है। सभी महिलाएँ सुनिश्चित करेंगी कि आम आदमी पार्टी के उम्मीदवार की ज़मानत ज़ब्त हो जाये। डेढ़ साल बाद के विधानसभा चुनावों में भी इनका सक्रिय बहिष्कार कर इन्हें हरवायेंगे, अगर ये हमारी माँगों की सुनवाई नहीं करते और यूनियन से बात नहीं करते। असल में केजरीवाल सरकार को पूरी दिल्ली में फैली 22 हज़ार आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों की ताक़त का अन्दाज़ा नहीं है। इन्होंने आँगनवाड़ी महिलाओं को कर्मचारी मानने से इंकार किया है, अब यही महिलाएँ इन्हें अपने बहिष्कार की ताक़त दिखायेंगी।

अगस्त माह के शुरू होने के साथ ही केजरीवाल सरकार ने आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों का मानदेय बढ़ाने की सारी ज़िम्मेदारी उपराज्यपाल और चुनाव आयोग के सर पर मढ़ दी है। बहुत सोची-समझी साज़िश के तहत केजरीवाल ने मानदेय बढ़ोतरी की फ़ाइल तब उपराज्यपाल के पास भेजी, जब बवाना उप चुनाव बिल्कुल सिर पर आ गया, ताकि वो अपनी ज़िम्मेदारी से बच जाये और वेतन न बढ़ने का सारा ढीकरा उपराज्यपाल और चुनाव आयोग पर फोड़ा जा सके।

वैसे तो उपराज्यपाल का इस मसले से कोई लेना देना नहीं था। अपने विधायकों की तनख़्वाह बढ़ाने में और अपने प्रचार-प्रसार में 526 करोड़ ख़र्च करने के लिए तो केजरीवाल सरकार ने राज्यपाल से कोई अनुमति नही माँगी। केजरीवाल सरकार अगर चाहती तो 24 जून को ही, जिस दिन 2015 के बाद बड़ी संख्या में आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों ने पहला प्रदर्शन किया था, मानदेय बढ़ोतरी का फ़ैसला ले सकती थी। पर इस फ़ैसले को जानबूझकर टाला गया। केजरीवाल ने अलग-अलग "आँगनवाड़ी कर्मचारियों" से मुलाक़ात का ढोंग रचा, पर उस यूनियन से बात करने से इनकार कर दिया जो इस हड़ताल का नेतृत्व कर रही है। और अब ऐन वक़्त पर सारी ज़िम्मेदारी से दिल्ली सरकार पल्ला झाड़ रही है। इस पूरे घटनाक्रम से साफ़ है कि केजरीवाल सरकार ने जानबूझकर आचार संहिता लगने के बाद ही वेतन बढ़ाने की घोषणा की, ताकि यह मामला रुक जाये और ज़िम्मेदारी भी उनके सर न आये। वास्तविकता तो यह है कि केजरीवाल सरकार वेतन बढ़ाना ही नहीं चाहती है।

अरविन्द केजरीवाल सरकार की इस लगातार जारी वायदा-खिलाफ़ी को देखते हुए हड़ताल की लीडिंग कमिटी ने 4 अगस्त को फिर एक ज़बरदस्त कार्यक्रम की योजना बनायी। 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' के नेतृत्व में हज़ारों आँगनवाड़ी वर्कर्स व हेल्पर्स ने राजघाट से दिल्ली सचिवालय तक 'आँगनवाड़ी आक्रोश रैली' का आयोजन किया। 15 अगस्त के मद्देनज़र दिल्ली पुलिस कार्यक्रम को लेकर आना-कानी कर रही थी, लेकिन महिलाओं की ताक़त के आगे आखिर उसे भी झुकना पड़ा। दिल्ली सचिवालय पहुँचकर महिलाओं ने ज़बरदस्त नारेबाज़ी की और अपनी सभा को चलाया। लेकिन केजरीवाल महाशय उस दिन भी नदारद थे।

इसके बाद 11 अगस्त को, दिल्ली विधान सभा सत्र के आख़री दिन 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' की अगुवाई में हड़ताल पर बैठी दिल्ली आँगनवाड़ी की हजारों महिलाओं ने केजरीवाल सरकार की वायदा-खिलाफ़ी के विरोध में सिविल लाइन्स से विधान सभा तक रैली निकाली और दिल्ली विधानसभा का घेराव किया। इस रैली के कार्यक्रम की जानकारी दिल्ली पुलिस को भी नहीं थी। हज़ारों की संख्या में जब आँगनवाड़ी की महिलाओं ने दिल्ली विधान सभा का रुख़ किया तो पुलिस के भी होश उड़ गये। आनन-फ़ानन में पुलिस को सारी तैयारियाँ करनी पड़ी। एक बार फिर महिलाओं ने लगभग एक घण्टे के लिए रिंग रोड जाम कर दिया और विधानसभा के सामने केजरीवाल के खिलाफ़ जमकर नारेबाज़ी की। इसी दिन केजरीवाल के आवास के बाहर सिविल लाइन्स पर इन हज़ारों आँगनवाड़ी कर्मियों ने दिल्ली विधानसभा के समान्तर अपनी असेम्बली भी चलायी। 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' द्वारा आयोजित आँगनवाड़ी की इस असेम्बली में हज़ारों महिलाओं ने भाग लिया। इस असेम्बली में आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की माँगें केजरीवाल सरकार द्वारा न माने जाने के कारण आम आदमी पार्टी के विरोध में पाँच प्रस्ताव भी पारित हुए। इस असेम्बली के आखिरी सत्र में मीडिया के सामने वे दस्तावेज़ दिखाये गये जिनसे यह साबित किया गया कि आँगनवाड़ी के पूरे कार्य में केजरीवाल सरकार द्वारा घोटला किया जा रहा है। इस असेम्बली में पास हुए पाँच प्रस्ताव थे – पहला, बवाना में रहने वाली आँगनवाड़ी कार्यकर्ता और उसका परिवार 23 अगस्त को वहाँ होने वाले उपचुनाव में आप पार्टी का बहिष्कार करेगा। दूसरा, अगर आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की माँगें नहीं मानी गयीं तो 2020 में दिल्ली में होने वाले विधानसभा चुनाव में आप पार्टी का पूर्ण बहिष्कार किया जायेगा। तीसरा, केजरीवाल सरकार द्वारा आयोजित सभी कार्यक्रमों का आँगनवाड़ी महिलाएँ बहिष्कार करेंगी। चौथा प्रस्ताव था दिल्ली सरकार की मज़दूर-विरोधी नीतियों को दिल्ली के लोगों के बीच गलियों में, बसों में अभियान चलाकर ले जाया जायेगा और केजरीवाल सरकार की असलियत का पर्दाफ़ाश किया जायेगा। और पाँचवाँ प्रस्ताव था कि आईसीडीएस स्कीम में दिल्ली सरकार द्वारा किये गये घोटाले को लेकर 'भ्रष्टाचार निरोधक शाखा' में शिकायत की जायेगी व दिल्ली हाईकोर्ट में इसी सम्बन्ध में जनहित याचिका भी लगायी जायेगी।

हड़ताल के पचासवें दिन एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। हड़ताल के दौरान कई सांस्कृतिक टीमों द्वारा हड़ताली महिलाकर्मियों के उत्साहवर्धन के लिए कार्यक्रम किये गये। इनमें प्रमुख थे - निशान्त नाट्य मंच, संगवारी, हसरतें आदि।

हड़ताल के दौरान कुछ दुखद घटनाओं का सामना भी करना पड़ा। इसी दौरान एक महिलाकर्मी का खराब स्वास्थ्य के कारण देहान्त हो गया। यूनियन द्वारा उनके परिवार के लोगों से मिलकर संवेदनाएँ व्यक्त की गयीं। साथ ही, यह निर्णय भी लिया गया कि स्ट्राइक फ़ण्ड से उनके परिवार की आर्थिक मदद भी की जाये।

आँगनवाड़ी की महिलाएँ अपनी यूनियन 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' के नेतृत्व में ज़बरदस्त और शानदार तरीक़े से अपनी हड़ताल को चला रही हैं और अपनी एकता के दम पर ज़रूर दिल्ली सरकार को झुकायेंगी!

# वीवो इण्डिया में मज़दूरों का शोषण और उत्पीड़न

'मेक इन इण्डिया' अभियान और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत में निर्माण करने के लिए न्यौता देने से रोज़गार पैदा होने के इसके दावे को काम के भयावह और अमानवीय 'अवसरों' के रूप में देखा गया है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण वीवो इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड है। वीवो कम्पनी एक चीनी स्मार्टफ़ोन निर्माता कम्पनी है जिसका भारतीय बाज़ार में प्रवेश दिसम्बर 2015 में 'मेक इन इण्डिया' कार्यक्रम के तहत हुआ था और यह इण्डियन प्रीमियर लीग 2017 की प्रायोजक भी थी। उत्तर प्रदेश के ग्रेटर नोएडा में स्थित इसकी निर्माण इकाई उस समय सुर्खियों में आयी, जब कम्पनी ने पिछले महीने आईपीएल सत्र के समापन पर अपने एक हज़ार कर्मचारियों को नौकरी से बर्ख़ास्त कर दिया और इससे नाराज़ कर्मचारियों ने 25 जुलाई 2017 को इसका प्रतिकार करते हुए फ़ैक्टरी में तोड़फोड़ की। हालाँकि, पीयूडीआर की जाँच में यह पता चला कि 25 जुलाई की घटना कम्पनी की नीतियों और अपने कर्मचारियों के साथ कम्पनी के व्यवहार का परिणाम थी।

**मज़दूरों की छँटनी :** कम्पनी में इस समय 6000 से ज़्यादा मज़दूर हैं और सभी ठेके पर हैं। कम्पनी केवल आईटीआई पास लोगों को नौकरी देती है, इसलिए सभी मज़दूर कुशल श्रमिक की श्रेणी में आते हैं। मज़दूरों का दावा है कि मई 2017 में आईपीएल सत्र के अन्त में कम्पनी में लगभग 24000 मज़दूर ठेके पर काम करते थे, जिन्हें दो महीने की अवधि में बिना किसी पूर्व नोटिस के एक-एक करके कम्पनी से बाहर निकाल दिया गया। इस इकाई में मुख्य रूप से काम चीन से आयातित पुर्जों को जोड़कर स्मार्ट फ़ोन बनाना होता है, जहाँ लगभग 70 मज़दूर एक साथ असेम्बली लाइन में काम करते हैं। पिछले दो महीने से कम्पनी लगातार विभिन्न असेम्बली लाइनों से जुड़े मज़दूरों को बाहर का रास्ता दिखा रही है।

**काम की परिस्थितियाँ :** मज़दूर अलग-अलग शिफ़्ट में काम करते हैं; नियमित शिफ़्ट 9 घण्टे की होती है जबकि दो अन्य शिफ़्टें 8-8 घण्टे की होती हैं। मज़दूरों को बिना किसी छुट्टी के पूरे 30 दिन काम करना पड़ता है, जिसके एवज़ में उन्हें प्रति माह 9300 रुपये मिलते हैं। पीएफ़ और इएसआई काटने के बाद, प्रत्येक मज़दूर को तीस दिन के काम के लिए महज़ लगभग 7100 रुपये मिलते हैं। इसके अलावा, कम्पनी मज़दूरों को फ़ैक्टरी लाने और ले जाने के लिए बस की सुविधा और कैण्टीन से भोजन की सुविधा मुफ़्त मुहैया कराती है। मज़दूरों का कहना है कि कैण्टीन का खाना बहुत ही घटिया क़िस्म का होता है। कम्पनी की नीति के तहत काम से एक दिन ग़ैर-हाज़िर रहने पर वेतन से 2000 रुपये काट लिए जाते हैं और यदि उपस्थिति पूरी रही, तो वेतन में अतिरिक्त 2000 रुपये जोड़ दिये जाते हैं। यह पुरस्कार वास्तव में दिया नहीं जाता बल्कि महज़ एक दिन ग़ैर-हाज़िर रहने पर वेतन से इस पुरस्कार राशि से 20 प्रतिशत अधिक की कटौती हो जाती है। पूरे दिन काम के दौरान, मज़दूरों को आधे घण्टे की छुट्टी खाने के लिए और 10 मिनट की छुट्टी चाय पीने के लिए मिलती है। इन छुट्टियों के अलावा, यदि कोई मज़दूर यहाँ तक कि बाथरूम जाने के लिए भी असेम्बली लाइन छोड़ता है तो उसे दण्डित किया जाता है। मज़दूर सुपरवाइज़रों द्वारा नियमित रूप से उत्पीड़न और दुर्व्यवहार किये जाने की शिकायत भी करते हैं। मज़दूर प्रति घण्टे 160 फ़ोन असेम्बल करने के लक्ष्य के साथ काम करते हैं। लक्ष्य पूरा नहीं करने पर मज़दूरों की पूरी लाइन को सेवाओं से बर्ख़ास्त कर दिया जाता है। मज़दूर द्वारा पीएफ़ की राशि का दावा छह महीने की सेवा के बाद ही किया जा सकता है, लेकिन कम्पनी पाँच महीने से ज़्यादा किसी मज़दूर को काम पर नहीं रखती। पिछले कुछ महीनों में कम्पनी से निकाले गये सभी मज़दूरों को पीएफ़ की राशि नहीं मिली। हाल के महीनों में मज़दूरों को यहाँ तक कि नियत 7100 रुपये भी नहीं मिल रहे हैं। कुल मिलाकर, मज़दूर बेहद असुरक्षा के माहौल में रहते और काम करते हैं। वे अपनी शिफ़्ट के लिए फ़ैक्टरी में प्रवेश कर सकते हैं और महज़ इतना बताने पर कि वे "वाम" श्रेणी के हिस्से हैं, उन्हें निकाला जा सकता है। वाम शब्द नौकरी से बर्ख़ास्तगी का प्रतीक है, कोई वजह नहीं बतायी जाती।

**25 जुलाई की घटना :** कुछ समय से मज़दूर नियमित रूप से निकाले जा रहे थे, जब यह घटना दोहरायी गयी और पूरी असेम्बली लाइन को निकाल बाहर किया गया तो मज़दूरों ने प्रतिकार किया। इसके जवाब में ठेकेदारों और प्रबन्धन के अन्य सदस्यों ने मज़दूरों से दुर्व्यवहार और मारपीट की। दुर्व्यवहार से मज़दूर और भड़क गये और लगभग 400 मज़दूरों ने अपने शारीरिक बल का प्रयोग करते हुए कुछ सम्पत्तियों को नुक़सान पहुँचाया और प्रबन्धन के कुछ सदस्यों को पीट दिया। मज़दूरों के अनुसार, प्रबन्धन ने पुलिस बुला ली और पुलिस ने लगभग 30 से 35 लोगों को गिरफ़्तार किया।

**पुलिस कार्रवाई :** गौतम बुद्ध नगर के इकोटेक जोन पुलिस स्टेशन, जहाँ पर शिकायत दर्ज की गयी थी, के एसएचओ के अनुसार, पुलिस ने मज़दूरों को शान्त कराया और हिंसा में शामिल सात मज़दूरों को गिरफ़्तार किया। पुलिस का दावा है कि वहाँ से छूटने पर रास्ते में मज़दूरों ने स्मार्टफ़ोन से लदे एक ट्रक को लूट लिया और लगभग 150 हैण्डसेट उसमें से ग़ायब थे। पुलिस ने 7 मज़दूरों और लगभग 250 अज्ञात लोगों के खिलाफ़ धारा 147 (दंगा करना), 148 (दंगा करना, घातक हथियार लेकर चलना), 149 (ग़ैर-क़ानूनी रूप से इकट्ठा होना), 379 (चोरी) और 427 ('उपद्रव' करना और नुक़सान पहुँचाना) के तहत प्राथमिकी दर्ज की। मज़दूरों ने ट्रक लूटने से इनकार किया है। यह भी स्पष्ट नहीं हुआ कि मज़दूरों के खिलाफ़ घातक हथियारों के साथ हिंसा करने के आरोप कैसे लगे, जबकि उन्हें कम्पनी परिसर में घुसने या वहाँ से निकलने से पहले तीन स्तरीय सुरक्षा जाँच से गुज़रना पड़ता है और ऐसी स्थिति में उनके लिए कोई सामान साथ ले जाना असम्भव होता है। पुलिस की कार्रवाई निश्चित तौर पर एकतरफ़ा है, क्योंकि मज़दूरों के उत्पीड़न, दुर्व्यवहार और उनके साथ हाथापाई करने के लिए, उसने प्रबन्धन और उसके कर्मचारियों के खिलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की।

**प्रबन्धन की चुप्पी :** प्रबन्धन ने तो पीयूडीआर से बात करने से इनकार कर दिया, लेकिन पुलिस ने उनका पक्ष रखा। कम्पनी के अनुसार, नौकरी का बेहतर अवसर पाने के कारण लगभग 300 से 400 मज़दूर हर महीने नौकरी छोड़ते हैं और यह कि कम्पनी ने किसी को भी नहीं निकाला। 25 जुलाई को मज़दूरों ने 150 फ़ोन चुराये जिनकी क़ीमत 20 लाख रुपये थी और 10 लाख की सम्पत्ति को नुक़सान पहुँचाया। कम्पनी ने केवल उन्हीं मज़दूरों को काम पर लेने से इनकार किया जो हिंसा में शामिल थे।

**उत्पीड़न जारी :** 25 जुलाई की घटना और मज़दूरों को निकाले जाने सम्बन्धी ख़बर 4 अगस्त को मीडिया में आने के बावजूद कम्पनी ने वही तौर-तरीक़ा अपनाया। 2000 रुपये का उपस्थिति पुरस्कार ख़त्म कर दिया गया और कुछ मज़दूरों को उनका जुलाई का वेतन 4000 रुपये से कम मिला। मज़दूरों ने प्रबन्धन से इस बारे में पूछा और उनके खिलाफ़ नारेबाज़ी की, जिसके बाद कई मज़दूरों को फिर निकाल दिया गया। मज़दूर आशंकित थे कि आने वाले दिनों में इस तरह की और बर्ख़ास्तगी होगी।

कम्पनी जहाँ पर स्थित है, वह ज़मीन जगनपुर गाँव की है, लेकिन वहाँ गाँव के मुश्किल से दस युवाओं को नौकरी मिली है। कम्पनी की नीति है कि मज़दूरों को दूर-दराज के क्षेत्रों से लिया जाये, ताकि उनकी यूनियन नहीं बने। इससे मज़दूर आसपास के गाँवों में कमरे लेने के लिए मजबूर होते हैं, जहाँ दो लोगों के रहने के लिए एक कमरे का किराया कम-से-कम 2200 रुपये प्रति माह होता है। अक्सर उन्हें किसी तीसरे व्यक्ति को रखने के लिए अतिरिक्त पैसा देना पड़ता है। ज़ाहिर है कि ज़्यादातर मज़दूरों के लिए नोएडा में अपने परिवार रख पाना असम्भव होता है। वास्तव में, कुछ मज़दूर अपने परिवार के साथ रहने और घर लौटकर खेती बाड़ी करने के मक़सद से बहुत दूर से आते हैं। जिनके पास गाँव में अपनी ज़मीन नहीं होती, उनकी ज़िन्दगी कम पगार और अत्यधिक अनिश्चितता के कारण बहुत ही अस्थिर हो जाती है।

यह सच है कि मेक इन इण्डिया ने प्रस्तावित लाभ हासिल करने के उद्देश्य से बहुत से स्मार्ट फ़ोन निर्माताओं को आकर्षित किया। इस पहल ने स्थानीय निर्मित हैण्डसेट पर कर आयातित पूरी तरह से निर्मित हैण्डसेट पर 12.5 प्रतिशत शुल्क की तुलना में 2 प्रतिशत कम कर दिया। यह सुविधा देने और भारत में बड़े बाज़ार की सम्भावना के कारण भारत में हैण्डसेट का निर्माण लाभदायक हो गया। भारत ने पिछले साल 37 मोबाइल निर्माताओं से निवेश आकर्षित किया जिनमें से छह से अधिक कम्पनियाँ चीनी हैण्डसेट निर्माता थीं। इनमें चीन की सबसे बड़ी टेलीकॉम कम्पनियों में से एक हुआवेई शामिल है। जियाओमी, जियोनी, लिइको, ओप्पो, वीवो, मीजु, वनप्लस, और कूलपैड जैसे ब्राण्ड या तो अपने संयन्त्र स्थापित कर चुके हैं या संयन्त्र स्थापित करने की घोषणा कर चुके हैं।

बहरहाल, वीवो में काम की स्थिति बताती है कि यहाँ बनायी जा रही रोज़गार की प्रकृति बहुत ही हतप्रभ करने वाली है। काम की भयानक स्थिति, प्रबन्धन द्वारा दुर्व्यवहार, वेतन के नाम पर मूँगफली, महीनों काम करने के बावजूद शून्य वेतन वृद्धि वीवो कम्पनी द्वारा प्रस्तावित नौकरी की प्रकृति को बताती है। यह मज़दूरी दासता की व्यवस्था को प्रतिबिम्बित करती है, जिसमें लोगों को अपनी इच्छा पर रखा और निकाला जाता है। यह भयानक रूप से फ़ॉक्सकॉन कम्पनी (शेनजेन, चीन) की याद दिलाती है जो सन 2010 में अपने कर्मचारियों द्वारा आत्महत्या किये जाने के लिए बदनाम हुई थी।

**पीयूडीआर की माँगें :**

1. मज़दूरों के खिलाफ़ एफ़आईआर तत्काल वापस ली जाये
2. श्रम क़ानूनों का उल्लंघन करने के लिए कम्पनी के खिलाफ़ कार्रवाई की जाये और काम की उचित स्थिति सुनिश्चित की जाये
3. निकाले गये मज़दूरों को वापस लिया जाये
4. मज़दूरी की दरें वैधानिक क़ानूनों के अनुसार संशोधित की जायें।

**– सिजो जॉय और अनुष्का सिंह**
सचिव, पीयूडीआर

# स्मार्ट सिटी के नाम पर ग़रीबों को उजाड़ रही राजस्थान सरकार

राजस्थान के जयपुर में पिछले कुछ दिनों से कच्ची बस्तियों को हटाने का सरकारी अभियान शुरू किया गया है। कुण्डा, सिरसी रोड, खड्डा बस्ती, झालाना इन्दिरा नगर आदि में बहुत से लोगों के मकान तोड़ दिये गये हैं। इन्दिरा नगर में पुलिस ने इसका विरोध कर रहे कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं व नागरिकों को गिरफ़्तार किया, उनको धमकाया और अदालत में जज ने भी उनको ज़मानत देने से इंकार कर दिया। नगर निगम व पुलिस के दस्ते ने इतना भी समय नहीं दिया कि लोग अपना सामान निकाल पायें। लोगों को उजाड़ने के पीछे सरकार का आधुनिक स्मार्ट सिटी बनाने का तर्क दे रही है। सुनने में यह एक अच्छी योजना लगती है, लेकिन दरअसल यह योजना अपने चरित्र से ही भयंकर जनविरोधी है। शहरों को स्मार्ट बनाने की इस पूँजीवादी योजना का खामियाजा ग़रीब जनता को ही चुकाना होगा। इसी के तहत राजस्थान में सरकार ने जयपुर आदि शहरों में एक-एक करके कच्ची बस्तियों से लोगों को खदेड़ना शुरू कर दिया है।

सरकार कहती है कि बस्ती वालों से सरकारी ज़मीन के ग़ैरक़ानूनी क़ब्ज़ों को ख़ाली करवाया जा रहा है। सरकार एकदम झूठ बोल रही है व उसकी नीयत कुछ और ही है। अगर सरकार वाक़ई सरकारी ज़मीन पर होने वाले अवैध क़ब्ज़ों को मुक्त कराना चाहती है तो इसकी शुरुआत उन प्रभावशाली धनी तबक़ों से करे जो संगठित होकर सरकारी ज़मीनों का घोटाला कर रहे हैं जिनमें भाजपा-कांग्रेस जैसे तमाम पूँजीवादी दलों के नेता, पूँजीपति-बिल्डर लॉबी, अफ़सर और भूमाफ़िया शामिल हैं। सरकार केवल ग़रीब तबक़े पर सारा दोष डालकर प्रभावशाली अमीर लोगों के खिलाफ़ चुप क्यूँ है?! जयपुर में उद्योग मैदान, मेवाड़ मिल, सूत मिल, पोद्दार मिल, जयपुर मेटल, दुर्लभजी अस्पताल, सुबोध स्कूल, महावीर कैंसर अस्पताल आदि कई ज़मीनें हैं जो व्यापक जनहित के नाम पर कौड़ियों के दाम निजी हाथों में दी गयीं और आज इनसे कहीं भी आम जन का हित नहीं सध रहा है व शर्तों का उल्लंघन करते हुए इन ज़मीनों का उपयोग मुनाफ़ा कमाने व अन्य कार्यों में हो रहा है। फ़ोर्टिस अस्पताल को करोड़ों की ज़मीन कौड़ियों के दाम दी गयी, इस शर्त पर कि वहाँ कुल मरीजों में से 15 से 20% तक ग़रीब तबक़े से होंगे व उनका नि:शुल्क इलाज होगा, लेकिन अस्पताल बन जाने के बाद फ़ोर्टिस अस्पताल ने इन शर्तों को मानने से साफ़ मना कर दिया और इसके बावजूद उसका भू-आवंटन निरस्त नहीं हुआ, न ही सरकार ने उस ज़मीन को वापस अपने क़ब्ज़े में लिया! सरकार उक्त सभी मसलों पर धनपशुओं के खिलाफ़ चुप है व उनके क़ानूनी-ग़ैरक़ानूनी क़ब्ज़ों को नियमित करने के लिए कोई-न-कोई तिकड़म व गली निकाल ही देती है। पूँजीवादी सरकारों के सारे क़ानून केवल ग़रीबों को लूटने के लिए ही होते हैं।

दूसरी बात यह है कि कच्ची बस्ती में रहने वाले लोग भी इस देश के नागरिक हैं, इसलिए उनको रोज़ी-रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, चिकित्सा और आवास की सुविधा देना इस सरकार की ज़िम्मेदारी है। सरकार शहरों को आधुनिक बनाये, सड़कों को चौड़ा करे, यातायात की व्यवस्था को ठीक करे - इससे जनता को कोई परहेज़ नहीं है, लेकिन ऐसा करने की प्रक्रिया में सरकार यदि आम जनता को उजाड़े और प्रभावशाली लोगों को भाँति-भाँति की छूटें, रियायतें, लाभ आदि दे, तो स्पष्ट हो जाता है कि यह सरकार केवल धनपशुओं की सरकार है, जो धनी तबक़ों के हितों की रक्षा करने के लिए ग़रीबों को कुचलती है। तब ऐसे में जनता को भी अपने हक़ों के लिए एकजुट होकर लड़ते हुए, समूची पूँजीवादी व्यवस्था के विकल्प के बारे में सोचना होगा।

**– मुनीश मैन्दोला**

# अस्पताल में मौत का तांडव : ज़िम्मेदार कौन?

– डा. नवमीत

11 अगस्त की ख़बर है कि गोरखपुर के बीआरडी मेडिकल कॉलेज में ऑक्सीजन की सप्लाई रोक दिये जाने की वजह से 40 बच्चों की मौत हो गयी। ये सभी बच्चे एनएनयू वार्ड और इंसेफ़ेलाइटिस वार्ड में भर्ती थे। जनवरी से लेकर 11 अगस्त तक इंसेफ़ेलाइटिस की वजह से इस मेडिकल कॉलेज में इलाज के दौरान 151 मासूमों की मौत हो चुकी है, जिनमें से 40 बच्चे 10-11 अगस्त को मर गये। ग़ौरतलब है कि यह मेडिकल कॉलेज यूपी के मुख्यमन्त्री योगी आदित्यनाथ के पूर्व संसदीय क्षेत्र में आता है। आदित्यनाथ घटना से दो ही दिन पहले इस अस्पताल का दौरा भी करके गया था। ख़बरों के अनुसार अस्पताल पर ऑक्सीजन सप्लाई करने वाली कम्पनी का 69 लाख का बिल बकाया था। इस वजह से कम्पनी ने गुरुवार यानी 10 अगस्त को अस्पताल के लिए ऑक्सीजन की सप्लाई रोक दी थी। लिक्विड ऑक्सीजन बन्द होने के बाद सारे ऑक्सीजन सिलेण्डर भी ख़त्म हो गये। इंसेफ़ेलाइटिस वार्ड में दो घण्टे तक अम्बू बैग का सहारा लिया गया लेकिन बिना ऑक्सीजन के यह तरीक़ा ज़्यादा देर तक कारगर नहीं हो पाया और इस तरह से सरकार की उदासीनता, अस्पताल प्रशासन की लापरवाही और कम्पनी की मुनाफ़ाखोरी की गाज अस्पताल में भर्ती बच्चों पर गिरी। बीआरडी मेडिकल कॉलेज में दो वर्ष पूर्व लिक्विड ऑक्सीजन का प्लाण्ट लगाया गया था। इसके ज़रिये इंसेफ़ेलाइटिस वार्ड समेत 300 मरीज़ों को पाइप के ज़रिये ऑक्सीजन दी जाती है। इसकी सप्लाई करने वाली कम्पनी पुष्पा सेल्स है। कॉलेज पर कम्पनी का 68 लाख 58 हज़ार 596 रुपये का बकाया था और बकाया रक़म की अधिकतम तय राशि 10 लाख रुपये है। बकाया की रक़म तय सीमा से अधिक होने के कारण देहरादून के आईनॉक्स कम्पनी की एलएमओ गैस प्लाण्ट ने गैस सप्लाई देने से इनकार कर दिया। नतीजा यह हुआ कि बात की बात में 40 मासूम इस मुनाफ़ाखोर व्यवस्था की भेंट चढ़ गये।

यह भी एकदम से नहीं हुआ, बल्कि गुरुवार की शाम से ही बच्चों की मौत का सिलसिला शुरू हो गया था। ऑक्सीजन की सप्लाई रुकी पड़ी थी और एक-एक कर बच्चों की मौत हो रही थी। अस्पताल के डॉक्टरों ने पुष्पा सेल्स के अधिकारियों को फ़ोन कर ऑक्सीजन भेजने की गुहार लगायी तो कम्पनी ने पैसे माँगे। तब कॉलेज प्रशासन भी नींद से जागा और 22 लाख रुपये बकाया के भुगतान की कवायद शुरू की। पैसे आने के बाद ही पुष्पा सेल्स ने लिक्विड ऑक्सीजन के टैंकर भेजने का फ़ैसला किया। लेकिन तब तक तो बहुत देर हो चुकी थी और 40 बच्चे भी मर चुके थे। यह ख़बर आने तक कहा जा रहा था कि यह टैंकर शनिवार की शाम या रविवार तक ही अस्पताल में पहुँच पायेगा। मौत के ऊपर लापरवाही और लालच का यह खेल भी नया नहीं है। पिछले साल अप्रैल में भी इस कम्पनी ने 50 लाख बकाया होने के बाद इसी तरह ऑक्सीजन की सप्लाई रोक दी थी।

दूसरी तरफ़ सरकार और प्रशासन का रुख़ भी इस मामले में बेहद शर्मनाक रहा। हिन्दुस्तान टाइम्स की ख़बर के अनुसार अस्पताल के डॉक्टरों ने प्रशासनिक अधिकारियों को संकट की जानकारी दी और मदद माँगी। मगर ज़िले के आला अधिकारी बेपरवाह रहे। वार्ड 100 बेड के प्रभारी डॉ. क़फ़ील ख़ान के बार-बार फ़ोन करने के बाद भी किसी बड़े अधिकारी व गैस सप्लायर ने फ़ोन नहीं उठाया, तो डॉ. क़फ़ील ने अपने डॉक्टर दोस्तों से मदद माँगी और अपनी गाड़ी से ऑक्सीजन के क़रीब एक दर्जन सिलेण्डरों को ढुलवाया। उनकी कोशिशों के बाद एसएसबी व कुछ प्राइवेट अस्पतालों द्वारा कुछ मदद की गयी। सशस्त्र सीमा बल के अस्पताल से बीआरडी को 10 जम्बो सिलेण्डर दिये गये। लेकिन अभी भी स्थिति भयावह थी और ज़्यादा मौतें होने की सम्भावना बनी रही थी।

बीमारी का यह हमला आकस्मिक नहीं था। इंसेफ़ेलाइटिस की वजह से हर साल हमारे देश में हज़ारों बच्चे मर जाते हैं। यह बीमारी हर बार इसी मौसम में अपना क़हर ढाती है। 1978 से अब तक इंसेफ़ेलाइटिस अकेले पूर्वांचल में 50 हज़ार से अधिक मासूमों को लील चुकी है। 2005 में इसने महामारी का रूप लिया था। तब अकेले बीआरडी मेडिकल कॉलेज में 1132 मौतें हुई थीं। मई 2017 में उत्तर प्रदेश सरकार ने इस बीमारी को जड़ से ख़त्म करने के लिए अभियान शुरू किया था। मोदी की तारीफ़ों के पुल बाँधते हुए आदित्यनाथ ने घोषणा की थी कि मोदी के आशीर्वाद से पोलियो और फ़ाइलेरिया की तरह इंसेफ़ेलाइटिस को भी ख़त्म कर दिया जायेगा। लेकिन हुआ ये कि जो बच्चे बच सकते थे, उनकी एक तरह से हत्या कर दी गयी। अब गोरखपुर के डीएम राजीव रौतेला ने घटना की जाँच की बात कही है। ज़ाहिर है कि जब तक जाँच होगी, तब तक हमेशा की तरह इस मामले को भी फ़ाइलों के नीचे दबाया जा चुका होगा।

और यह सिर्फ़ गोरखपुर या इस एक अस्पताल की बात नहीं है। पूरे ही देश में स्वास्थ्य सेवाओं का यही हाल है। जनता को हर तरह की स्वास्थ्य सेवा देने की ज़िम्मेदारी होती है सरकार की। लेकिन अव्वल तो सरकार यह करती नहीं है और कुछ सरकारी अस्पताल जो ठीक ठाक काम करते भी थे, उनकी हालत भी अब बद से बदतर होती जा रही है। पिछले दो दशक में आर्थिक सुधारों और नवउदारवादी नीतियों के चलते यहाँ हर क्षेत्र की तरह जनस्वास्थ्य की हालत भी खस्ता हो चुकी है। सरकार लगातार इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ाती जा रही है। अब पूँजीपति तो कोई भी काम मुनाफ़े के लिए ही करता है तो साफ़ है कि स्वास्थ्य सेवाएँ महँगी तो होनी ही हैं। और महँगी होने के बाद भी जान नहीं बचती। परिणाम हमारे सामने है। किस तरह मुनाफ़े के लिए पुष्पा सेल्स नाम की इस कम्पनी ने 40 बच्चों की जान ले ली है। लेकिन साथ में सरकार और प्रशासन भी बराबर ज़िम्मेदार है।

बहरहाल अच्छे दिनों, भारत निर्माण, इण्डिया शाइनिंग के लोकलुभावने नारे देने वाली और लव जिहाद, गौहत्या जैसे साम्प्रदायिक मुद्दे उछालने वाली सरकारों को आम आदमी की सेहत का कोई ख़्याल नहीं रहता है। पहली बात तो ऑक्सीजन या दवाओं या फिर किसी भी ज़रूरी सामान की उपलब्धता सरकार को ही सुनिश्चित करनी चाहिए और अगर नहीं करती है तो इस उपलब्धता को सुनिश्चित के लिए ज़रूरी बजट हर हाल में उपलब्ध होना चाहिए। साथ में यह भी सुनिश्चित होना चाहिए कि यह बजट सही समय पर सही जगह लग जाये। लेकिन इनमें से कोई भी चीज़ नहीं होती और इसी तरह से मरीज मौत का शिकार हो जाते हैं। बजट की बात करें तो विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार किसी भी देश को अपनी जीडीपी का कम-से-कम 5 प्रतिशत हिस्सा स्वास्थ्य क्षेत्र में लगाना चाहिए। भारत की सरकारों ने पिछले दो दशक के दौरान लगातार 1 प्रतिशत के आसपास ही लगाया है। 11वीं पंचवर्षीय योजना में 2 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया था और केवल 1.09 प्रतिशत ही लगाया गया। 12वीं योजना के पहले सरकार ने उच्च स्तरीय विशेषज्ञों का एक ग्रुप बनाया था जिसने इस योजना में स्वास्थ्य सेवाओं के लिए जीडीपी का 2.5 प्रतिशत निवेश करने की सिफ़ारिश की थी, लेकिन सरकार द्वारा लक्ष्य रखा सिर्फ़ 1.58 प्रतिशत। पिछले बजट में भी यह डेढ़ प्रतिशत के आसपास ही रहा है। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं में निजी क्षेत्र द्वारा किया गया निवेश इस क्षेत्र में किये गये कुल निवेश का 75 प्रतिशत से भी ज़्यादा है। पूरी दुनिया में स्वास्थ्य सेवाओं के अन्तर्गत निजी क्षेत्र की होने वाली सबसे बड़ी भागीदारियों में एक नाम भारत का भी है। ज़ाहिर है कि निजी क्षेत्र की ये कम्पनियाँ लोगों के स्वास्थ्य से खेलते हुए पैसे बना रही हैं। इनकी दिलचस्पी लोगों के स्वास्थ्य में नहीं बल्कि अपने मुनाफ़े में होती है और जब इनको लगता है कि मुनाफ़ा कम होने लगा है या उसमें कोई अड़चन आ गयी है तो ये ऐसा ही करती हैं जैसे इन्होंने गोरखपुर के इस अस्पताल में किया। और यह सब सरकार की शह पर होता है।

इसके अलावा देश के हर नागरिक को स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित होनी चाहिए। सही समय पर सही अस्पताल, डॉक्टर और इलाज मुहैया हो यह ज़िम्मेदारी भी सरकार की ही है। मानकों के अनुसार हमारे देश में हर 30000 की आबादी पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, हर एक लाख की आबादी पर 30 बेड वाले एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र और हर सब-डिविज़न पर एक 100 बेड वाला सामान्य अस्पताल होना चाहिए, लेकिन यह भी सिर्फ़ काग़ज़ों पर है। और यह काग़ज़ों के मानक भी सालों पुराने हैं जिनमें कोई बदलाव नहीं किया गया है। बदलाव करना तो दूर की बात है। इन्हीं मानकों को सही ढंग से लागू नहीं किया जाता, जबकि पिछले दो दशक में कुकुरमुत्तों की तरह प्राइवेट और कॉर्पोरेट अस्पताल ज़रूर उग आये हैं, जिनमें जाकर मरीज या तो बीमारी से मर जाता है या फिर इनके भारी-भरकम ख़र्चे की वजह से। अब सरकार एक और शिगूफ़ा लेकर आयी है, पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप। मतलब सरकार अब प्राइवेट कम्पनियों के साथ सहकारिता करेगी और लोगों को अन्य सेवाओं के साथ स्वास्थ्य सेवाएँ भी उपलब्ध करवायेगी। यह शिगूफ़ा और कुछ नहीं, बल्कि पुष्पा सेल्स जैसी कम्पनियों को मुनाफ़ा देने की क़वायद है, ताकि ये पैसे बना सकें और समय आने पर इस मामले की तरह लोगों की जान से खेल सकें।

बहरहाल बात यह है कि इन बच्चों सहित इस देश में रोज़ होने वाली ऐसी मौतों, जिनको रोका जा सकता था, के लिए मुनाफ़े पर आधारित यह व्यवस्था ज़िम्मेदार है। साथ में ज़िम्मेदार है इस देश की सरकारें, जो कहने को तो इस देश की हैं, लेकिन काम वे करती हैं पूँजीपतियों के लिए। किस तरह से इस मानवद्रोही व्यवस्था को ख़त्म किया जाये, यह आज के समय का सबसे बड़ा सवाल है और इसका जवाब हम सबको ही ढूँढ़ना होगा, ताकि इस तरह से मासूमों की बलि न चढ़ सके।

## अब भी चेत जाओ वरना हत्यारों-लुटेरों का यह गिरोह पूरे समाज की ऑक्सीजन बन्द कर देगा!

(पेज 1 से आगे)

वह डॉक्टर मुसलमान था। हमारा समाज ऐसी शर्मनाक और डरावनी हालत में पहुँच चुका है कि ऐसे झकझोर देने वाले मामलों को भी ज़हरीले साम्प्रदायिक प्रचार की धुन्ध से झुठलाया जा सकता है। सरकारी जाँचों में डॉक्टर कफ़ील पर कोई इल्ज़ाम साबित न होने के बाद भी झूठ की फ़ैक्ट्री अपने गन्दे काम में लगी हुई है।

जिस लोकसभा क्षेत्र में ये घटना घटी है, वहाँ से पिछले 5 कार्यकाल में मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ही सांसद रहे हैं। आम लोगों से ज़्यादा उन्हें गाय की चिन्ता दिखती है। पहली गोवंश चिकित्सा मोबाइल एम्बुलेंस योगी ने यहीं शुरू की थी। यहीं पर मोदी ने 2014 में इन्सेफ़लाइटिस से मरने वाले बच्चों के लिए रुआँसे गले से शोक प्रकट किया था और सत्ता में आने पर सब ठीक करने का सपना दिखाया था। इसी इन्सेफ़लाइटिस के विरोध में संघर्ष करने का ढोल बजाकर आदित्यनाथ ने सत्ता पायी। लेकिन ऑक्सीजन के लिए भाजपा की दोनों सरकारें 67 लाख रुपये की ज़रूरत पूरी नहीं कर सकी। उल्टा इस वर्ष के बजट में चिकित्सा शिक्षा का आवंटन घटाकर आधा कर दिया गया है। जान लें कि बीआरडी मेडिकल कॉलेज और अन्य सरकारी कॉलेजों को इसी मद में पैसे मिलते हैं। ऐसे 14 मेडिकल कॉलेजों और उनके साथ जुड़े टीचिंग अस्पतालों का बजट पिछले वर्ष के 2344 करोड़ से घटाकर इस वर्ष 1148 करोड़ कर दिया गया है। बीआरडी मेडिकल कॉलेज का आवंटन पिछले वर्ष 15.9 करोड़ से घटकर इस वर्ष केवल 7.8 करोड़ रह गया है। इतना ही नहीं, मशीनों और उपकरणों के लिए इसे मिलने वाली राशि पिछले वर्ष 3 करोड़ से घटाकर इस वर्ष केवल 75 लाख कर दी गयी है। प्रदेश के तमाम राजकीय मेडिकल कॉलेजों में यही हुआ है। उदाहरण के लिए, कानपुर और इलाहाबाद के मेडिकल कॉलेजों का आवंटन 15.9 करोड़ से घटकर इस वर्ष क्रमश: 3.3 करोड़ और 4.2 करोड़ रह गया है। गोरखपुर मेडिकल कॉलेज के इंसेफलाइटिस वार्ड में कार्यरत 378 चिकित्सा कर्मियों (चिकित्सक, शिक्षक, नर्स व कर्मचारी) को मार्च 2017 से तनख्वाह नहीं मिली है व 11 पीएमआर कर्मचारियों को 27 महीने से वेतन नहीं मिला है।

इससे पहले जून में मध्यप्रदेश के इंदौर में भी ऑक्सीजन की आपूर्ति 15 मिनट के लिए बन्द होने से 2 बच्चों सहित 17 लोगों की मौत हो गयी थी। तब भाजपा ने मीडिया पर अपने नियंत्रण के दम पर इस बात को दबा दिया था।

याद कीजिये, गोरखपुर के मासूम बच्चों ने ऑक्सीजन बन्द होने से किस तरह घुट-घुटकर दम तोड़ा होगा। अगर अब भी आपके दिल में इन हत्यारों के प्रति नफ़रत और ग़ुस्सा नहीं फूट पड़ता, तो आपको इलाज की ज़रूरत है। वरना, अगर इंसान हैं, तो जाग जाइये, और इन आदमख़ोरों से अपने बच्चों को, अपने समाज को, अपने मुल्क को बचाने के लिए आवाज़ उठाइये!

## 'आज़ादी कूच' के सन्दर्भ में...

# एक सम्भावना-सम्पन्न आन्दोलन के अन्तरविरोध और भविष्य का प्रश्न

**– शिशिर**

हाल ही में ऊना काण्ड के बाद चली ऐतिहासिक 'दलित अस्मिता यात्रा' के एक वर्ष पूरे होने पर राष्ट्रीय दलित अधिकार मंच के नेतृत्व में अहमदाबाद में एक सम्मेलन के साथ 11 जुलाई को आज़ादी कूच की शुरुआत का एलान किया गया। 12 जुलाई से पुलिस द्वारा आज्ञा रद्द किये जाने के बावजूद मेहसाणा के सोमनाथ चौक पर जनसभा करके यात्रा की शुरुआत की गयी। इस कार्यक्रम में शुरू से ही देश भर के कई वामपंथी संगठनों व जनसंगठनों से कार्यकर्ता शामिल हुए थे। 11 जुलाई को हुए सम्मेलन में छात्र नेता कन्हैया कुमार, दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षक प्रो. रतनलाल, पत्रकार अनिल चमड़िया, पटेल समुदाय की नेता रेशमा पटेल व कुछ स्थानीय मुसलमान नेता भी शामिल थे। 11 जुलाई के सम्मेलन व 12 जुलाई को शुरू हुई यात्रा में मुख्य मसला था दलित भूमिहीन मज़दूरों को वे ज़मीनें दिलवाना जो कि कागज़ पर आवण्टित हो चुकी हैं। आन्दोलन के प्रमुख नेतृत्व की जिम्मेदारी निभा रहे जिग्नेश मेवानी ने इस बाबत हुए भारी भ्रष्टाचार के विस्तृत आंकड़े पेश किये और बताया कि 2012 में इस प्रश्न को लेकर एक जनहित याचिका भी दायर की गयी थी। जिग्नेश ने यह भी माँग की कि दलितों को आवण्टित की गयी तमाम ज़मीनों पर तथाकथित दबंगों का कब्ज़ा है और कायदे से उनके ख़िलाफ़ दलित उत्पीड़न क़ानून के तहत मुकदमा दर्ज होना चाहिए। लेकिन कई वर्षों तक यह गोरखधंधा जारी रहने के बावजूद ऐसा कोई मुकदमा दर्ज नहीं किया गया है। जिग्नेश ने अपनी बात में आगे संविधान के तहत समाजवादी व धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाने की माँग को रखा और सभी भाजपा-विरोधी प्रगतिशील ताकतों को एक मंच पर आने का आह्वान किया। 11 जुलाई के इस सम्मेलन को छात्र नेता कन्हैया कुमार ने भी सम्बोधित किया। हमेशा की तरह उनका भाषण लोकरंजक बातों, चुटीली टिप्पणियों और चुटकुले-नुमा बातों से भरा था लेकिन उसमें कोई ठोस कार्यक्रम या योजना पेश नहीं की गयी थी, जो कि उनके पास है भी नहीं। रेशमा पटेल ने पाटीदारों की ओर से आन्दोलन को समर्थन दिया, जिसके बाद मंच पर 'जय भीम-जय सरदार' के नारे गूँजे।

इससे पहले कि हम 'आज़ादी कूच' और राष्ट्रीय दलित अधिकार मंच की समूची राजनीति, जिग्नेश मेवानी की राजनीति के विषय में कॉमरेडाना तौर पर कुछ आलोचनात्मक प्रेक्षण रखें, हम इस आन्दोलन के सकारात्मक योगदानों की चर्चा करेंगे।

### ऊना का दलित विद्रोह: एक नयी शुरुआत, कुछ नयी सम्भावनाएँ और एक नया योगदान

पिछले वर्ष ऊना में दलितों की बर्बरता से पिटाई का वीडियो फैलते ही देश भर में इस घटना और इसके दोषियों के विरुद्ध असन्तोष की लहर दौड़ गयी। इसके बाद गुजरात में जनसंघर्ष मंच समेत अनेक जनसंगठनों, विशेष तौर पर ऊना दलित अत्याचार लड़त समिति के नेतृत्व में 'दलित अस्मिता यात्रा' की शुरुआत की गयी। इसी आन्दोलन से आगे चलकर 'राष्ट्रीय दलित अधिकार मंच' एक संगठन के रूप में सामने आया। ऊना काण्ड के बाद किये गये इस शानदार आन्दोलन में न सिर्फ ऊना काण्ड के आरोपियों को सज़ा दिलवाने की माँग की गयी, बल्कि कई अन्य महत्वपूर्ण राजनीतिक व सामाजिक प्रश्नों को भी उठाया गया। मिसाल के तौर पर, दलितों के बीच भूमि सुधार व ज़मीन के बँटवारे का मसला, दलित आबादी द्वारा जातिगत पेशों को खत्म करवाने और साथ ही दलित आबादी के ख़िलाफ़ बढ़ रहे उत्पीड़न के मद्देनज़र उनके तमाम जनवादी और नागरिक अधिकारों को सुनिश्चित करने का मसला।

**इस रूप में जिग्नेश मेवानी और उनके नेतृत्व में हुए आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण योगदान है।** जाति-अन्त आन्दोलन पिछले कई दशकों से प्रतीकवाद और सतही मुद्दों की राजनीति का शिकार रहा है। इसका कारण यह है कि जाति-अन्त आन्दोलन के नेतृत्व में ज़्यादातर जगहों पर या तो अस्मितावादी राजनीति हावी है या फिर अम्बेडकरवादी व्यवहारवादी राजनीति। अस्मितावादी राजनीति और अम्बेडकरवादी व्यवहारवाद के हावी होने का ही नतीजा है कि जब गोहाणा, भगाणा, मिर्चपुर, खैरलांजी, जैसे काण्ड होते हैं या बथानी टोला व लक्ष्मणपुर बाथे जैसे काण्ड के हत्यारों को कोर्ट द्वारा छोड़ दिया जाता है तो ज़्यादातर दलितवादी संगठन सड़कों पर नहीं उतरते; वे ज़्यादा से ज़्यादा ज़ुबानी जमाखर्च करके संतोष कर लेते हैं। लेकिन अगर किसी विश्वविद्यालय का नाम बदलकर किसी दलितवादी राजनीति के प्रतीक के नाम पर रखना हो, स्कूली पाठ्यपुस्तकों में अम्बेडकर व नेहरू के कार्टून पर विवाद हो जाये, या अम्बेडकर की मूर्ति की उंगली टूट जाये, तो वे इस कदर भयंकर हल्लागुल्ला मचाते हैं, मानो प्रलय आ गयी हो। इस मामले में एनसीईआरटी की एक पुरानी पाठ्यपुस्तक में (जिसे कि अम्बेडकर के प्रति गहरी हमदर्दी रखने वाले बुद्धिजीवियों सुहास पल्शीकर व योगेन्द्र यादव ने तैयार किया था) छपे कार्टून को लेकर हुआ विवाद प्रातिनिधिक उदाहरण है। यह कार्टून भारत में आज़ादी के बाद संविधान बनने की प्रक्रिया को लेकर उस समय के एक अखबार में छपा था। तमाम दलितवादियों, अस्मितावादियों व अम्बेडकरवादियों ने इसे अपने ढंग से समझा और फिर पूरे देश में काफ़ी विवाद हुआ। इसमें एक घटना यह भी घटी कि एक अम्बेडकरवादी संगठन ने सुहास पल्शीकर के कार्यालय पर हमला कर दिया। **ऐसे में, देखा जा सकता है कि किसी भी प्रकार की अस्मितावादी राजनीति बेहद गैर-जनवादी कट्टरपंथ की ओर जा सकती है।** लेकिन ये ही कट्टरता दिखाने वाले अम्बेडकरवादी व्यवहारवादी व अस्मितावादी संगठन उस समय चुप रहते हैं जब मेहनतकश दलितों से जुड़े मसले सामने आते हैं। मिसाल के तौर पर, हाल ही में जब जवखेड़ काण्ड हुआ था तो उसके ख़िलाफ़ बुलाये गये प्रदर्शन में तो ये अम्बेडकरवादी संगठन शामिल नहीं हुए, और बाद में इन्होंने 'फैक्ट फाइण्डिंग टीम' भेजने का निर्णय किया, जबकि पहला सही काम यह होना चाहिए था कि इसके ख़िलाफ़ सार्वजनिक प्रदर्शन कर समाज में प्रतिरोध की आवाज को पहुँचाया जाये। इस प्रकार के दर्जनों उदाहरण दिये जा सकते हैं जिसमें ये अम्बेडकरवादी व अस्मितावादी संगठन प्रतीकात्मक मुद्दों पर अस्मिता को केन्द्र बनाकर काफी शोर मचाते हैं लेकिन जब असली मसले उपस्थित होते हैं, जिसमें कि मेहनतकश दलित आबादी का प्रश्न आता है तो ये ग़ायब हो जाते हैं या फिर एक बयान भर जारी करके हाथ झाड़ लेते हैं।

इस मायने में पिछले वर्ष राष्ट्रीय दलित अधिकार मंच व अन्य जनसंगठनों द्वारा जिग्नेश मेवानी के नेतृत्व में शुरू हुए आन्दोलन के बारे में एक बात स्पष्ट रूप से कही जानी चाहिए: **एक लम्बे अरसे बाद जाति-अन्त आन्दोलन में एक ऐसी धारा पैदा हुई है जो कि जाति-अन्त आन्दोलन को प्रतीकात्मक मसलों से आगे ठोस भौतिक मसलों पर ले जा रही है। इसका श्रेय काफ़ी हद तक जिग्नेश मेवानी के नेतृत्व को और उनकी युवा टीम की ऊर्जा को जाना चाहिए।** यह एक मायने में इस समय देश का एकमात्र ऐसा दलित आन्दोलन है जो कि केवल प्रतीकात्मक मसलों को नहीं उठा रहा, बल्कि प्राथमिकता और पूरे ज़ोर के साथ उन मसलों को उठा रहा है जो कि व्यापक मेहनतकश व मज़दूर दलित आबादी को प्रभावित करते हैं। चलते-चलते बता दिया जाना चाहिए कि आज भी करीब 88 से 90 प्रतिशत दलित या तो शहरी या फिर ग्रामीण मज़दूर हैं। ऐसे में, कोई भी दलित आन्दोलन जो कि अस्मितावादी मुद्दों की चौहद्दी में कैद है, उसका चरित्र प्रतिक्रियावादी ही माना जाना चाहिए। मौजूदा दौर में, ऊना काण्ड के बाद शुरू हुआ यह आन्दोलन एक सुखद अपवाद है। इस आन्दोलन ने दलित उत्पीड़न (जिसके बर्बरतम रूपों के शिकार 99 प्रतिशत मसलों में मेहनतकश दलित होते हैं), दलितों के रोज़गार, शिक्षा, स्वास्थ्य और साथ ही ज़मीन का मसला उठाया है और पुरज़ोर तरीके से उठाया है। **इस मायने में जिग्नेश मेवानी की अगुवाई में इस आन्दोलन ने एक बड़ा योगदान किया है और जाति-अन्त के आन्दोलन में एक नयी राह खोली है। इसके लिए इनकी पूरी टीम को क्रान्तिकारी सलाम पेश किया जाना चाहिए।**

**लेकिन ठीक इसी वजह से कि इस आन्दोलन ने कई अर्थों में एक नयी शुरुआत की है और नयी सम्भावनाओं के द्वार खोले हैं, इसके अन्तरविरोधों, विरोधाभासों और कुछ गम्भीर समस्याओं पर चर्चा की आज ज़रूरत है।** इसलिए हम इस आन्दोलन की कुछ समस्याओं की पड़ताल करेंगे। हम शुरुआत कुछ प्रातिनिधिक घटनाओं से करेंगे जो कि 'आज़ादी कूच' के दौरान घटित हुई और जो आन्दोलन में निहित कुछ समस्याओं की ओर इशारा करती हैं।

### आज़ादी कूच और ऊना काण्ड के बाद शुरू हुए आन्दोलन की कुछ समस्याएँ

**1. व्यवहारवाद का असर और उसका खतरा**

कुछ घटनाओं का हमने शुरुआत में जिक्र किया है। इनमें से एक घटना यह है कि जब पटेलों की नुमाइन्दगी करने वाली नेता रेशमा पटेल ने अपने भाषण का समापन किया तो 'जय भीम-जय सरदार' के नारे लगने लगे। गौरतलब है कि यहाँ 'जय भीम-लाल सलाम' के जोड़े में से 'लाल सलाम' गायब ही हो गया! वैसे तो 'जय भीम-लाल सलाम' का नारा अपने आप में अर्थहीन है, लेकिन हम उस पर बाद में आयेंगे। अभी फिलहाल इस नुक्ते पर कि आज़ादी कूच के नेतृत्व और जिग्नेश मेवानी को सरदार वल्लभभाई पटेल के समर्थन में जय-जयकार के नारे उठाने में भी कोई समस्या नहीं हुई। किसी भी सचेत राजनीतिक कार्यकर्ता को यह पता है कि सरदार पटेल कांग्रेस में दक्षिणपंथी धड़े का नेतृत्व करते थे। हिन्दू दक्षिणपंथ की ओर उनका झुकाव व कई दमित राष्ट्रीयताओं को बल प्रयोग या ज़ोर-ज़बर्दस्ती से भारतीय संघ में मिलाने में उनकी भूमिका भी किसी से छिपी नहीं है। जातिवाद और ब्राह्मणवाद का कांग्रेस के भीतर की हिन्दू दक्षिणपंथी लॉबी (राजेन्द्र प्रसाद, राजगोपालाचारी आदि) से उनका सम्बन्ध भी जगज़ाहिर रहा है। **ऐसे में, एक प्रतिबद्ध जाति-विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व यदि तात्कालिक हितों के लिए राजनीतिक सिद्धान्तों को तिलांजलि देता है, तो यह अन्त में उसके ही नुकसान का कारण बनेगा।** साथ ही, ऐसा कदम दिखलाता है कि उसके भीतर व्यवहारवाद की गहरी प्रवृत्ति है। साथ ही, **सबसे मज़ेदार बात यह थी कि भाकपा (माले) लिबरेशन जैसे धुर अवसरवादी संशोधनवादी संगठन के लोग भी ज़ोर-शोर से 'जय भीम-जय सरदार' के कोरस में मगन थे!** खैर, इसमें कोई अचरज की बात भी नहीं है। माले लिबरेशन का रिकार्ड इस प्रकार के अवसरवाद में शुरू से ही माहिर रहा है। ज़ाहिर है, माले लिबरेशन की संशोधनवादी राजनीति एक बेहद सम्भावनासम्पन्न आन्दोलन पर अपने अवसरवाद से भयंकर विषाक्त प्रभाव डाल रही है, विशेषकर तब जबकि इस आन्दोलन का नेतृत्व अदमनीय ऊर्जा से लैस होने के बावजूद विचारधारात्मक तौर पर सीखने की प्रक्रिया में है और अनुभवहीन है। ग़ौरतलब है कि माले

(पेज 10 पर जारी)

# एक सम्भावना-सम्पन्न आन्दोलन के अन्तरविरोध और भविष्य का प्रश्न

(पेज 9 से आगे)

लिबरेशन की नेत्री कविता कृष्णन अण्णा हज़ारे के नेतृत्व वाले 'इण्डिया अगेंस्ट करप्शन' के मंच पर विराजमान होने पहुँची थीं, हालाँकि उस मंच पर ऐसी तमाम चीज़ें हो रही थीं जिनका मीडिया पैनलों पर वह काफ़ी गर्मागर्म शब्दों में विरोध करती हैं जैसे कि भारत माता का चित्र, भारत माता की जय के नारे आदि। लेकिन धुर दक्षिणपंथी लोकरंजकतावादी अण्णा हज़ारे ने जब उन्हें वहाँ से भगा दिया तो माले लिबरेशन वाले भी 'इंडिया अगेंस्ट करप्शन' को दक्षिणपंथी बताने लगे और अपना भ्रष्टाचार-विरोधी मोर्चा खोल लिया (वैसे यह भी सोचने की बात है कि कोई कम्युनिस्ट पार्टी महज़ भ्रष्टाचार का विरोध करके साफ़-सुथरे पूँजीवाद के विभ्रम को बढ़ावा क्यों देगी?)! यानी 'अंगूर खट्टे थे'! बहरहाल, **इस संशोधनवादी पार्टी का ऐसा ही चाल-चलन शुरू से रहा है।** यह 'सर्फ़ बोर्ड' लेकर हर लहर की सवारी करने को बेताब रहती है!

हम अपनी तरफ़ से इस ऊना आन्दोलन के नेतृत्व को यही राय देंगे कि किसी भी राजनीतिक और विचारधारात्मक धुरी से रिक्त ऐसे अवसरवादियों से बचें क्योंकि ये आज ऊना आन्दोलन के नेतृत्व की जय-जयकार का नारा लगा रहे हैं मगर अपने संकीर्ण सांगठनिक हितों के लिए कल ये किसी का भी जयकारा लगा देंगे। यह भी ग़ौरतलब है कि आज ऐसे अन्य कई वामपंथी अवसरवादियों में जिग्नेश मेवानी को एक व्यक्ति के तौर पर और समूचे ऊना आन्दोलन को भी तुष्टिकरण के ज़रिये लपक लेने की एक शर्मनाक प्रतिस्पर्द्धा मची हुई है। आन्दोलन और उसके नेतृत्व को कॉमरेडाना आलोचनाओं के ज़रिये एक सही विचारधारात्मक दिशा और दृष्टि देने के बजाय ये तमाम अवसरवादी संगठन किसी भी तरह के विचारधारात्मक समझौतों के ज़रिये इस आन्दोलन को लपक लेना चाहते हैं। ज़ाहिर है, इससे अन्त में किसी का लाभ नहीं होने वाला है और विशेष तौर पर आन्दोलन की तो कतई हानि होगी।

**2. भूमि प्रश्न पर जिग्नेश मेवानी के आन्दोलन की अवस्थिति और उसके असमाधेय विरोधाभास**

दूसरा अहम प्रश्न यह है कि जिस भौतिक मुद्दे पर जिग्नेश मेवानी की अगुवाई में यह आन्दोलन ज़ोर दे रहा है, क्या वह आज देश की व्यापक मेहनतकश दलित आबादी के लिए एक जीवन्त और आवश्यक मुद्दा है? देश में समूची भूमिहीन आबादी का 47 प्रतिशत दलित आबादी है। इसमें पिछले तीस वर्षों में अपनी ज़मीनें बेचने को मजबूर हुई दलित आबादी भी है। उसे दोबारा एक छोटी-सी ज़मीन का मालिक बना देने से उसकी कौन-सी समस्या का समाधान होगा? उल्टे वह एक समस्या में फँस जायेगा जिसे लेनिन ने **'अपनी ही जोत द्वारा आत्म-शोषण'** कहा था। सभी जानते हैं कि छोटी जोत की खेती केवल पैसा पीती है और देती कुछ नहीं है। ज़मीन के मालिकाने से मोह रखने वाले ग़रीब किसान परिवारों के बेटे (कभी-कभी बेटियाँ भी) शहरों में जाकर या दूसरे बड़े किसानों की खेतों पर काम करके पैसे कमाकर छोटी जोत की खेती में झोंकते रहते हैं और उससे कुछ भी नहीं मिलता। वहीं यह भी समझने की बात है कि पूँजीवादी खेती के विकास के साथ खेती का मसला केवल जोत के आकार का प्रश्न नहीं है बल्कि पूँजी की उपलब्धता, ऋण की उपलब्धता आदि पर ज़्यादा निर्भर हो गया है। इसके अलावा यह भी देखने की ज़रूरत है कि आज जिन किसानों के पास डेढ़ से दो हेक्टेयर ज़मीन है, उन किसानों की क्या स्थिति है। ऐसे किसानों का बड़ा हिस्सा पहला मौका मिलते ही किसानी छोड़ना चाहता है, जैसा कि कई सर्वेक्षणों में सामने आ चुका है। कई किसान तो चपरासी और खलासी की नौकरी के लिए घूस देने के लिए अपने खेत बेच रहे हैं।

**तीसरी बात यह है कि कोई आन्दोलन यदि सिर्फ़ दलित भूमिहीन के लिए ज़मीन माँगता है, तो गैर-दलित भूमिहीन के प्रति उसका क्या रुख होगा?** यदि वह पूछता है कि उसके लिए यह आन्दोलन ज़मीन क्यों नहीं माँग रहा है, तो इसका क्या जवाब होगा? ऐसी अवस्थिति इस आन्दोलन को आगे दुविधा में डाल देगी और यदि यह इस माँग पर अड़ा रहता है तो यह भूमिहीन मज़दूरों के समूचे वर्ग के बीच एकता बनाने में भारी बाधा पैदा करेगा।

**चौथी बात, गुजरात और समूचे भारत में आज खेती योग्य इतनी ज़मीन बची ही नहीं है कि सभी भूमिहीन किसानों को तो दूर सभी दलित भूमिहीनों को भी जीविकोपार्जन योग्य आकार की ज़मीन दी जा सके।** एक आकलन के अनुसार अगर आज समस्त भूमिहीनों में भूमि पुनर्वितरण किया जाये तो सबके हिस्से 1.25 हेक्टेयर ज़मीन आयेगी। ज़रा आज के उन किसानों पर निगाह डाल ली जाये जिनके पास इतनी ज़मीनें हैं। इनमें से ज़्यादातार अर्द्धभुखमरी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं, कर्ज़ों के नीचे दबकर आत्महत्याएँ कर रहे हैं या फिर ज़मीनें बेचकर मज़दूरों की जमात में शामिल हो रहे हैं। आज के दौर में खेती का प्रश्न सामूहिकीकरण से ही हल हो सकता है। आज जबकि किसानों की व्यापक आबादी (70 फ़ीसदी से भी ज़्यादा) को एक प्रगतिशील नारे के लिए तैयार किया जा सकता है, तो फिर उन्हें एक अतीतगामी नारे में क्यों फंसाया जा रहा है, जिससे उन्हें कुछ भी हासिल नहीं होगा? आज इस किसान आबादी और भूमिहीन खेतिहर मज़दूरों के लिए सबसे बड़ा प्रश्न है रोज़गार और शिक्षा तथा राजकीय स्वास्थ्य सेवाओं का प्रश्न। ये वे माँगें हैं जिनपर उन्हें गोलबन्द और संगठित किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। उन्हें किसी शेखचिल्ली के सपने में नहीं फँसाया जाना चाहिए।

**3. लागत मूल्य और लाभकारी मूल्य के लिए संघर्ष: प्रगतिशील या प्रतिगामी?**

इस बात को एक हद तक जिग्नेश मेवानी भी स्वीकारते हैं और कहते हैं कि इसके लिए वे लागत मूल्य घटाने और लाभकारी मूल्य बढ़ाने का मुद्दा भी उठायेंगे। यह तो और भी भयंकर बात होगी और समूचे आन्दोलन को मेहनतकशों से दूर करेगी। कारण यह है कि लाभकारी मूल्य की माँग पूर्ण रूप से धनी किसानों की माँग है और यह ग़रीब और मँझोले किसानों के ख़िलाफ़ जाती है। कारण यह है कि लाभकारी मूल्य के बढ़ने से अनाज की कीमतों में वृद्धि होती है और जो भी किसान अनाज का मुख्य रूप से खरीदार है, न कि उत्पादक, उसके लिए भोजन और महँगा हो जाता है। आज देश की कुल आबादी में भूमि के मालिक किसान 27 प्रतिशत से कम हैं और उसमें भी 80 प्रतिशत किसान परिधिगत किसान हैं जो मूलत: और मुख्यत: अनाज के उत्पादक नहीं बल्कि खरीदार हैं। ऐसे में, लाभकारी मूल्य बढ़ने का फायदा केवल धनी किसानों को होगा (जो कि अक्सर स्वयं आढ़ती और सूदखोर भी होते हैं), अनाज व्यापारियों को होगा। इसमें खेतिहर मज़दूर और ग़रीब व मंझोले किसानों का तो भारी नुकसान होगा। सम्भवत: आज़ादी कूच के नेतृत्व को लाभकारी मूल्य की माँग उठाने की सलाह सीपीआई (एमएल) न्यू डेमोक्रेसी के लोगों ने (जो कि पंजाब में धनी किसानों की इस माँग को लेकर लड़ती रहती है) और सीपीआई (एमएल) लिबरेशन के लोगों ने दी है। हमारा सुझाव है कि इस माँग पर गहराई से सोचें क्योंकि यह पूरी माँग ही जनविरोधी माँग है और समूचे मज़दूर वर्ग और ग़रीब किसान वर्ग के ख़िलाफ़ जाती है। जहाँ तक दूसरी माँग का सवाल है तो यह भी मूलत: एक प्रतिक्रियावादी माँग ही है। कारण यह कि लागत मूल्य कम करने का अर्थ है कि कृषि की आगत लागतों (इनपुट कॉस्ट) को कम करना। ये आगत लागतें मूलत: उर्वरक, बिजली, सिंचाई सुविधाओं का मूल्य कम करने की माँग है। ये मूल्य आम तौर पर तभी कम किये जा सकते हैं जबकि इनके उत्पादन या आपूर्ति की व्यवस्था करने वाले उद्यमों में शोषण की दर बढ़ाई जाये, यानी मज़दूरों की वास्तविक मज़दूरी को घटाया जाये, श्रम सघनता को बढ़ाया जाये और बेशी मूल्य की दर को उत्पादकता वृद्धि के ज़रिये बढ़ाया जाये। ऐसे में, यह माँग भी आम तौर पर व्यापक मेहनतकश आबादी के ख़िलाफ़ जाती है। और अगर लागत मूल्य कुछ कम हो भी गया तो छोटे पैमाने की किसानी का बाज़ार अर्थव्यवस्था में टिक पाना असम्भव है। कारण यह है कि लागत कम होने का भी सबसे ज़्यादा लाभ बड़े धनी किसानों को ही ज़्यादा होगा जिनकी इन सभी इनपुट्स तक पहुँच कहीं ज़्यादा है। ऐसे में, आन्दोलन के नेतृत्व का भूमि की माँग उठाने की असंगतता को संतुलित करने के लिए लागत मूल्य और लाभकारी मूल्य के प्रश्न को उठाने का कदम इस असंगतता और असंतुलन को घटाने की बजाय और बढ़ायेगा। आखिरी बात यह कि आज गुजरात में इतनी ज़मीन ही नहीं है जिससे कि सभी भूमिहीन दलितों को 3 से 5 एकड़ ज़मीन दी जा सके। ऐसा केवल तभी किया जा सकता है जब कि धनी और उच्च मध्य पाटीदार किसानों से ज़मीनें छीनीं जाएँ। क्या आन्दोलन यह माँग उठायेगा? ऐसी सूरत में पाटीदारों की ओर से रेशमा पटेल ने जो समर्थन दिया, वह तब भी देने आयेंगी? ऐसा लगता नहीं है। **वास्तव में, ज़मीन पुनर्वितरण की राजनीति का युग आज़ादी के एक दशक के बाद ही बीत चुका था।** भारतीय खेती में पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध प्रधान बन चुके थे और प्रशियाई पथ से हुए भूमि सुधारों में भूतपूर्व सामन्तों को ही पूँजीवादी भूस्वामी बनाया जा चुका था। जो थोड़े-बहुत भूमि सुधार देश के कुछ हिस्सों में हुए थे, वहाँ भी पिछले चार-पाँच दशक के पूँजीवादी विकास ने खेती में संकेंद्रीकरण की प्रक्रिया को उस मुकाम पर पहुँचा दिया है जिसमें छोटे किसानों की भारी आबादी या तो तबाह हो चुकी है या तबाह होने की कगार पर है। ऐसे में, उन्हें फिर कुछ दशक पीछे ले जाने का और डेढ़-दो हेक्टेयर ज़मीन देकर फिर से उसी पूरी दर्दनाक प्रक्रिया से गुज़ारने का क्या अर्थ है? ऐसे में, हम आन्दोलन के नेतृत्व से अपील करेंगे कि भूमि व किसान प्रश्न पर अपनी पूरी अवस्थिति पर पुनर्विचार करें क्योंकि तात्कालिक लोकरंजकता व लोकप्रियता देने के बावजूद यह आपके आन्दोलन को अन्त में एक बन्द गली में ले जायेगा और दूरगामी तौर पर बेहद नुकसानदेह होगा।

अब हम राष्ट्रीय दलित अधिकार मोर्चा की बेहद सम्भावना सम्पन्न और बेहद युवा टीम के प्रमुख और सक्षम नेता साथी जिग्नेश मेवानी की विचारधारात्मक व राजनीतिक अवस्थिति के विषय में बेहद विनम्रता के साथ कुछ बातें कहना चाहेंगे और चाहेंगे कि इन बातों को आलोचनात्मक सुझाव व विनम्रता से पेश कुछ प्रेक्षणों के तौर पर लिया जाये क्योंकि हमें इस बात का अहसास है कि आन्दोलन का नेतृत्व अभी किसी ठोस विचारधारात्मक व राजनीतिक अवस्थिति पर नहीं पहुँच सका है और पहुँचने की प्रक्रिया में है।

**क्या वास्तविक जिग्रेश मेवानी सामने आयेंगे?**

इसमें कोई दो राय नहीं है कि जिग्नेश मेवानी के रूप में जाति आन्दोलन को काफ़ी समय बाद एक सक्षम नेतृत्व प्राप्त हुआ है। उनकी युवा टीम के योगदान को भी किसी भी रूप में कम करके नहीं आँका जा सकता है, जिसने पिछले एक वर्ष की यात्रा में प्रशंसनीय कार्य किया है। लेकिन कुछ विचारधारात्मक व राजनीतिक प्रश्नों पर उनकी अवस्थिति को लेकर हम सुनिश्चित नहीं हो पाते हैं कि वह क्या है? यह अनिश्चितता की स्थिति हमें महज विचारधारात्मक व राजनीतिक विभ्रम या सही अवस्थिति की तलाश के कारण पैदा हुई नहीं लगती है। ऐसी सूरत में उसमें कुछ भी गड़बड़ नहीं होता। लेकिन, यह एक प्रकार के व्यवहारवाद और भ्रूण रूप में अवसरवाद के कारण पैदा हुई समस्या लगती है। यह कतई इरादों पर सन्देह करना नहीं है। निश्चित तौर पर हम मानते हैं कि जिग्नेश मेवानी और नेतृत्व के अन्य साथियों के इरादे नेक हैं, लेकिन उनकी विचारधारात्मक अवस्थिति पर स्पष्टत: सचेतन या अवचेतन स्तर पर व्यवहारवाद का असर है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि इसका कारण अम्बेडकर व अम्बेडकरवाद का असर हो। लेकिन हम अटकलबाज़ियों में नहीं जायेंगे और ठोस तौर पर अपने इस प्रेक्षण को पुष्ट करेंगे।

**1. 'लाल' और 'नीला' मिलाने से क्या बनेगा?**

जिग्नेश मेवानी ने गांवों-कस्बों में यात्रा गुज़रने के दौरान जो भाषण दिये उसमें उन्होंने माना कि क्रान्ति के बिना जाति उन्मूलन सम्भव नहीं है। लेकिन आगे उन्होंने कहा कि इसीलिए 'जय भीम' और 'लाल सलाम' को मिलाने की आवश्यकता है। हमारा मानना है कि यह भ्रामक बात है। **जब आप 'जय भीम' बोलते हैं तो आपका क्या अर्थ होता है?** निश्चित तौर पर, आपका अर्थ केवल डा. अम्बेडकर के नाम का जयकारा लगाना नहीं होता होगा। आपका अर्थ निश्चित तौर पर अम्बेडकर की विचारधारा की हिमायत करना होता है। अम्बेडकर की विचारधारा क्या है? अम्बेडकर की विचारधारा अमेरिकी उदार पूँजीवादी विचारधारा की एक शाखा ड्यूईवादी व्यवहारवाद है। यह विचारधारा क्या कहती है? यह विचारधारा निम्न बातों को मानती है और डा. अम्बेडकर का इनमें अटूट विश्वास था:

**1. समाज और प्रकृति में हर परिवर्तन क्रमिक होता है और क्रान्तिकारी परिवर्तन या छलांग की इसमें कोई जगह नहीं होती।**

**2. समाज वर्गों व वर्गों के अन्तरविरोधों से नहीं बनता और संचालित होता है, बल्कि यह असंगत समूहों का एक समुच्चय होता है, जिनमें मालिकों के संघ, मज़दूरों की यूनियन, किसी चुनावी दल से लेकर एक बास्केटबॉल क्लब आदि तक शामिल है! यानी बस वर्ग को छोड़कर कोई भी असंगत, अतुलनीय समूहों का समुच्चय स्वीकार्य है।**

**3. समाज में केवल क्रमिक परिवर्तन होते हैं और जो क्रमिक परिवर्तन होते हैं, उसके मुख्य कारक या अभिकर्ता जनसमुदाय नहीं होते, बल्कि सरकार होती है। जनसमुदायों द्वारा स्वयं बलपूर्वक अपने अधिकार**

(पेज 11 पर जारी)

# एक सम्भावना-सम्पन्न आन्दोलन के अन्तरविरोध और भविष्य का प्रश्न

(पेज 10 से आगे)

**प्राप्त करने के प्रयास से केवल हिंसा होती है और हिंसा केवल विनाश पैदा करती है।**

**4. सरकार के चिन्तन और कार्य को प्रभावित करने की जिम्मेदारी बौद्धिक समुदाय की होती है और इसीलिए दलित समुदाय के नौजवानों को सरकार में व्हाइट कॉलर नौकरियों में जाना चाहिए और सरकारी कर्मचारी बनकर सरकार की कार्रवाइयों व नीतियों को निर्धारित करना चाहिए।**

इन चार विशेषताओं के अलावा व्यवहारवाद की अन्य कई विशेषताएँ हैं जिन पर चर्चा करना यहाँ प्रासंगिक नहीं होगा।

लेकिन साथ ही डा. अम्बेडकर के मार्क्सवाद और आमूलगामी क्रान्ति के बारे में विचारों से परिचित होना उपयोगी होगा। उनका कहना था कि मार्क्सवाद 'सुअरों का दर्शन' है। इसके अलावा उनका मानना था कि मज़दूरों की हड़तालें और कम्युनिज्म जुड़वां भाई हैं और वे इनके विरोध में हैं क्योंकि इससे कम्युनिस्टों को राजनीतिक फायदा मिलता है और मज़दूरों का आर्थिक नुकसान होता है। साथ ही, उन्होंने यह भी कहा था कि आजादी मिलने के बाद हमारे जनवादी गणराज्य में बलपूर्वक या हिंसात्मक रूप में अपने हक़ों के लिए लड़ने का कोई स्थान नहीं है। यहाँ इशारा किसान विद्रोहों की ओर था। यह अम्बेडकर के स्पष्ट विचार थे। ऐसे में, **यदि जय भीम के नारे का अर्थ अम्बेडकर की विचारधारा की हिमायत है, तो फिर जिग्नेश मेवानी उसे लाल सलाम से किस तरह मिलाना चाहते हैं?**

दूसरी बात यह कि यह नारा अपनेआप में एक व्यक्ति-केन्द्रित अतार्किक नारा है। कोई क्रान्तिकारी कभी 'जय भगतसिंह' या 'जय मार्क्स' का नारा नहीं लगायेगा। तीसरी बात, यह नारा डा. अम्बेडकर के जीवन काल में जन्म ले चुका था। कायदन, इसका विरोध कर ऐसे नारे की अतर्कपरकता पर उसी समय डा. अम्बेडकर को स्वयं प्रश्न उठाना चाहिए था। बहरहाल, किन्हीं वजहों से ऐसा नहीं हो पाया होगा और आज इसके लिए डा. अम्बेडकर की आलोचना करने का कोई 'ऑपरेटिव पार्ट' नहीं है। लेकिन आज जाति-अन्त आन्दोलन में कम से कम तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाला कोई व्यक्ति इस नारे की किस प्रकार हिमायत कर सकता है? लेकिन यह प्रश्न अभी छोड़ भी दिया जाय तो मूल बात यह है कि अम्बेडकरवाद और मार्क्सवाद के बीच विचारधारात्मक तौर पर कोई तालमेल नहीं हो सकता है क्योंकि ये दोनों दो विपरीत विश्व दृष्टिकोण, अप्रोच और मेथड हैं। मुद्दों के आधार पर जेनुइन व ईमानदार अम्बेडकरवादी संगठनों व क्रान्तिकारी जनसंगठनों के बीच मोर्चा बन सकता है। लेकिन विचारधारात्मक तौर पर किसी समन्वय की बात करना अज्ञान होगा। यही कारण है कि चन्द एक पढ़े-लिखे अम्बेडकरवादी (क्योंकि अधिकांश अम्बेडकरवादियों ने स्वयं अम्बेडकर को नहीं पढ़ा है!) और क्रान्तिकारी मार्क्सवादी ऐसे किसी समन्वय का विरोध करते हैं। ऐसे में, सीपीआई (एमएल) न्यू डेमोक्रेसी के लोग 'जय भीम - लाल सलाम' की ताल पर ता-ता थैया क्यों कर रहे थे, यह गहरे शोध का विषय है! शायद उन्हें लगता है कि ऐसे तुष्टिकरणों से दलित जनता को साथ लिया जा सकता है। यह नादानी है। **दलित जनता के बीच सक्रिय संगठन व साथ ही स्वयं दलित जनता भी समझती है कि आज तमाम वामपंथी अम्बेडकरवादियों से भी ज़्यादा अम्बेडकरवादी क्यों बन रहे हैं और रुदालियों की तरह छाती पीट-पीटकर अम्बेडकर के प्रश्न पर 'गलती हो गयी-माफ कर दो' की कव्वाली क्यों गा रहे हैं।** ऐसी तुष्टिकरण की राजनीति न तो कहीं ले जायेगी और न ही सफल हो सकती है। सबसे मज़ेदार स्थिति उन लोगों की बन जाती है जो अम्बेडकरवाद और मार्क्सवाद का तालमेल करने का प्रयास करते हैं और दो स्टूलों पर साथ बैठने का प्रयास करने के चक्कर में दोनों स्टूलों के बीच गिर जाते हैं। आनन्द तेलतुम्बडे जैसे बुद्धिजीवियों और आजकल तमाम मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों व संगठनों की आजकल कुछ ऐसी ही हास्यास्पद स्थिति बनी हुई है। अन्दर ही अन्दर वे जानते हैं अम्बेडकरवाद किसी भी सामाजिक परिवर्तन के लिए सरकार को सुधारवादी आवेदन, प्रार्थनाएँ और अर्जियाँ देने से आगे नहीं जाता है जबकि मार्क्सवादी समाज में परिवर्तन के क्रान्तिकारी सिद्धान्त की हिमायत करता है और मानता है कि कोई भी परिवर्तन वर्ग संघर्ष, क्रान्ति और बल प्रयोग के बगैर नहीं होता। **हमारा मानना है कि दो नावों की सवारी से पैदा होने वाली इस हास्यास्पद मगर त्रासद नियति से ऊना आन्दोलन के नेतृत्व को बचना चाहिए और विचारधारात्मक व राजनीतिक तौर पर एक साफ स्थिति अपनानी चाहिए।**

साथी जिग्नेश का भूमि के प्रश्न को उठाने को लेकर जो मानना है, उसके बारे में हम पिछले उपशीर्षक में ही अपनी राय ज़ाहिर कर चुके हैं। आज के दौर में ज़मीन पुनर्वितरण का नारा एक प्रतिगामी नारा है क्योंकि इतिहास उस मंज़िल से आगे निकल चुका है।

## 2. भूमि और श्रमिकों के प्रश्न पर डा. अम्बेडकर की अवस्थिति क्या थी?

जिग्नेश मेवानी अम्बेडकर की विरासत को वामपंथी परम्परा के नजदीक लाने के प्रयास में कहते हैं कि अम्बेडकर को जीवन के अन्तिम दिनों में यह लगने लगा था कि उन्होंने गाँव के ग़रीब व भूमिहीन दलितों के लिए ज़्यादा कुछ नहीं किया था और इसीलिए उन्होंने अपने करीबी सहयोगी व शिष्य दादा साहेब गायकवाड़ को गाँव के ग़रीब दलितों के भूमि के प्रश्न को उठाने के लिए कहा था। इसी दौरान जिग्नेश ने एक साक्षात्कार के दौरान कहा कि अम्बेडकर ने भूमि और श्रमिकों के मसले पर क्या कहा था इसके बारे में कोई कुछ नहीं बोलता है। **हम यही कहेंगे कि जिग्नेश सिर्फ इतनी बातें कहकर रुक न जाएँ और खुद बताएँ कि अम्बेडकर ने भूमि सुधार व श्रमिकों के मसले पर क्या कहा था।**

हम संक्षेप में बताना चाहेंगे कि इस बारे में अम्बेडकर के क्या विचार थे। अम्बेडकर ने महाड़ सम्मेलन (मार्च, 1927) में भूमि के प्रश्न पर कहा था कि दलितों को खेती के क्षेत्र में जाना चाहिए और उन्हें **'वन विभाग से प्रार्थना करनी चाहिए वह बेकार पड़ी ज़मीन उसे दे दे।' गौर करें कि अम्बेडकर सामन्ती रियासतों व जागीरों को भंग कर ज़मीन जब्ती और भूमिहीनों के बीच उसके पुनर्वितरण की माँग नहीं कर रहे थे बल्कि वन विभाग की बेकार ज़मीन के लिए प्रार्थना कर रहे थे। आज़ादी के बाद भी अम्बेडकर का स्पष्ट तौर पर मानना था कि जमींदारों से बिना मुआवज़े के ज़मीन नहीं छीननी चाहिए क्योंकि उनका निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त में अटूट भरोसा था।**

अम्बेडकर ने कभी भी भूस्वामियों से ज़मीन छीनकर किसानों को देने की माँग नहीं उठायी जो कि वास्तव में भूमि सुधार का सही अर्थ होता है। वे मानकर चलते थे कि ये जागीरें सामन्तों व जमींदारों की निजी सम्पत्ति हैं। उनका इस बात पर कभी ध्यान नहीं गया कि ये जागीरें जनता से जमीनें छीन-छीनकर और ग़रीबों को बेदखल करके खड़ी की गयी थीं और इन्हीं जागीरों पर इन भूमिहीनों ने अपनी कई पीढ़ियां खर्च कर इन ऐयाश ज़मींदारों के लिए सुख-समृद्धि पैदा की थी। दादा साहेब गायकवाड़ ने जब भूमि सुधार आन्दोलन के तीन दौर 1953, 1959 और 1965 में चलाये तो इसमें एक ही इजाफा किया। उन्होंने इसके लिए व्यापक जनान्दोलन किया, जो कि अम्बेडकर ने इस पैमाने पर कभी नहीं किया था। लेकिन दादा साहब गायकवाड़ भी जमींदारों की जमीनें छीनकर दलित भूमिहीनों में बाँटने की माँग नहीं कर रहे थे। आइये देखते हैं कि उनके चार्टर में क्या लिखा था। उनका चार्टर इस प्रकार था:

1. लोकसभा के प्रांगण में डा. अम्बेडकर की प्रतिमा लगायी जाये।
2. वास्तव में स्वयं खेती करने वाले के लिए क़ानून में सुधार किया जाये।
3. सरकार को बेकार जमीनों को भूमिहीनों को दे देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त सात और माँगें थीं जिनमें न्यूनतम मज़दूरी क़ानून को लागू करना, खाद्य सामग्री की कम दामों पर उपलब्धता को सुनिश्चित करना आदि शामिल था। 1964 में, यानी कि आन्दोलन के तीसरे चरण में लाखों लोगों ने गिरफ्तारी दी। इसके बाद दादा साहेब गायकवाड़ ने सरकार को भूमि देने के विषय में कुछ सलाहें दीं। वे इस प्रकार थीं: बंजर भूमि को उपजाऊ बनाया जाय और उन्हें भूमिहीनों को दिया जाय। **यानी कि यह आन्दोलन कहीं भी रैडिकल भूमि सुधार की माँग नहीं कर रहा था। वास्तव में यह वही माँग कर रहा था जिसकी बात अम्बेडकर ने की थी: सरकार द्वारा खाली पड़ी बेकार जमीनों को भूमिहीनों में बाँटना। यानी, बड़े भूस्वामियों की ज़मीन पर कोई 'बुरी नज़र' डाले बिना दलित भूमिहीनों के लिए भूदान!** यह भूमि मालिकाने में असमानता और बड़े भूस्वामियों से जमीनें लेने की वास्तविक क्रान्तिकारी माँग को नहीं उठा रहा था बल्कि सरकार/राज्यसत्ता से दान माँग रहा था। यह जरूर है कि यह दान माँगने के लिए दादा साहेब गायकवाड़ ने एक जनान्दोलन किया। लेकिन उसके निशाने पर जमींदारों का समूचा वर्ग नहीं था। जैसा कि अम्बेडकर का मानना था, हर परिवर्तन सरकार के द्वारा आता है, न कि वर्गों के संघर्ष के द्वारा। इसलिए यहाँ भी भूस्वामियों के समूचे वर्ग को निशाने पर रखने, रैडिकल भूमि सुधारों की माँग करने की बजाय सरकार से दान माँगा जा रहा था। **क्या इसे रैडिकल भूमि सुधार का आन्दोलन कहा जाय? क्या यह माना जाय कि अम्बेडकर अपने जीवन के अन्त में सरकार व राज्यसत्ता से आमना-सामना करने की किसी रैडिकल नीति पर आ गये थे? क्या यह माना जाय कि दादा साहेब गायकवाड़ ने कोई क्रान्तिकारी भूमि सुधार आन्दोलन किया था? कतई नहीं। यह तो बुर्जुआ दायरे के भीतर भी रैडिकल भूमि सुधार नहीं माना जा सकता है।** इसलिए हमें लगता है कि इस विषय में पूरी जांच-पड़ताल करके आन्दोलन के नेतृत्व को समझना होगा कि भूमि के प्रश्न पर अम्बेडकर और बाद में उनके अनुसरणकर्ताओं की क्या समझदारी थी।

जहाँ तक श्रमिकों व पूँजीपतियों के रिश्ते के विषय में अम्बेडकर की समझदारी का प्रश्न है तो वे स्पष्ट तौर पर मानते थे कि श्रम और पूँजी के हित वास्तव में समान हैं और उनके अन्तरविरोध केवल सतह के स्तर पर होते हैं, यानी प्रतीतिगत होते हैं। उनके बीच कोई वास्तविक अन्तरविरोध नहीं होते। किसी भी उदार बुर्जुआ चिन्तक के समान वे मानते थे कि मज़दूरों को सामूहिक मोलभाव का हक़ है। इसीलिए वायसराय की परिषद के श्रम मन्त्रालय के सदस्य के तौर पर उन्होंने इण्डियन ट्रेड यूनियन अमेण्डमेंट बिल पारित करवाने में केन्द्रीय भूमिका निभाई। **लेकिन हर उदार बुर्जुआ चिन्तक समझता है कि सुनवाई का कोई क़ानूनी चैनल न होना, सामूहिक मोलभाव का कोई मैकेनिज़्म नहीं होना पूँजी के हितों के लिए और भी ज़्यादा खतरनाक होता है। यह विस्फोटों की ओर ले जाता है।** इसलिए उदार बुर्जुआ चिन्तक विचारधारात्मक तौर पर ईमानदारी से मज़दूरों के सामूहिक हितों के प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था के तौर पर एक ट्रेड यूनियन को मान्यता देते हैं। लेकिन क्या अम्बेडकर जुझारू व रैडिकल हड़तालों पर भरोसा करते थे? नहीं। एक उदाहरण पर नज़र डालें।

बम्बई की 1929 की प्रसिद्ध टेक्सटाइल मिल की हड़ताल में दलितों को हड़ताल में भागीदारी न करने की सलाह देने भी वह स्वयं नहीं गये थे बल्कि ससून मिल के मालिक फ्रेडरिक स्टोंज के बुलावे पर गये थे। कहने के लिए मसला यह था कि कारखाने में मौजूद जातिगत श्रम विभाजन पर अम्बेडकर की आपत्ति थी। और हड़ताल में कम्युनिस्टों के नेतृत्व वाली यूनियन ये मसला नहीं उठा रही थी। लेकिन फिर **सवाल यह उठता है कि अम्बेडकर हड़ताल से पहले या उस वक्त अपनी पहल पर क्यों नहीं गये, ससून मिल के मालिक स्टोंज़ के बुलावे पर हड़ताल से दलित मज़दूरों को अलग होने के लिए कहने क्यों गये?** अप्रैल 1929 में भी उन्होंने फिर से चालू हुई हड़ताल को खत्म करवाने के लिए सक्रिय अभियान चलाया। **इसका कारण यह नहीं था कि अम्बेडकर बेईमान, दलाल या मज़दूरों के विरुद्ध थे। इसका कारण यह था कि एक जेनुइन व्यवहारवादी के तौर पर उनका स्पष्ट तौर पर मानना था कि समाज वर्गों व वर्गों के अन्तरविरोध से बनता और संचालित नहीं होता। यह असंगत सामाजिक समूहों का समुच्चय होता है जिनमें कोई वास्तविक अन्तरविरोध नहीं होता है, केवल प्रतीतिगत अन्तरविरोध होता है और वह सरकार, यानी कि महान मध्यस्थकर्ता या सर्वाधिक तार्किक अभिकर्ता यानी कि सरकार के हस्तक्षेप से सुलझाया जा सकता है।** इसीलिए उन्होंने कहा था कि हड़तालें और कम्युनिज़्म जुड़वां भाई हैं और वे इनका समर्थन कभी नहीं करते।

बेहद संक्षेप में, ये हैं भूमि प्रश्न पर तथा श्रम व पूँजी के रिश्तों पर अम्बेडकर के विचार। **क्या जिग्नेश मेवानी इन विचारों से सहमत हैं? यदि हां तो उन्हें सार्वजनिक तौर पर इन्हें स्वीकार करना चाहिए। अगर नहीं तो भी उन्हें सार्वजनिक तौर पर इस बात को कहना चाहिए। अगर वे इन विचारों को स्वीकार नहीं करते, तो अम्बेडकरवादी विचारधारा का और क्या बचा रहता है, सिवाय एक 'एंप्टी स्लोगन' के?** तब तो बात सिर्फ इतनी है कि जाति-अन्त के प्रति जेनुइन सरोकार होने के कारण डा. अम्बेडकर का सम्मान किया जाय। लेकिन किसी का सम्मान करना और उसकी विचारधारा को स्वीकार करना, उसके नाम के विचारधारात्मक नारे लगाना दो अलग चीजें हैं। जिग्नेश और ऊना के बाद खड़े हुए आन्दोलन के नेतृत्व को इन प्रश्नों पर अपनी अवस्थिति को साफ करना चाहिए और भ्रामक बयान नहीं देने चाहिए जैसे कि 'बाबासाहेब ने भूमि और श्रम के प्रश्न पर क्या कहा था

(पेज 15 पर जारी)

# अर्थव्यवस्था में सुधार के हवाई दावों की हक़ीक़त

(पेज 1 से आगे)

में जीडीपी (कुल घरेलु उत्पाद) के 37% से कम होते हुए 2016 में 27% ही रह गया।

10 अगस्त को फ़िक्की और भारतीय बैंक संघ का एक सर्वेक्षण प्रकाशित हुआ, जिसमें बताया गया कि 2017 के पहले 6 महीनों में बैंकों के डूबे क़र्ज़ में भारी वृद्धि हुई है। इसमें लगभग सारे सरकारी और तीन चौथाई निजी बैंकों ने इस दौरान क़र्ज़ की वसूली की स्थिति में गिरावट को स्वीकार किया है। आधे से अधिक बैंकों के अनुसार धातु, आधारभूत उद्योगों और वस्त्र उद्योग को दिये गये क़र्ज़ की वसूली में भारी दबाव की स्थिति पायी गयी। 11 अगस्त को आये सबसे बड़े बैंक स्टेट बैंक ऑफ़ इण्डिया के तिमाही नतीजों ने इसकी पुष्टि भी कर दी - हालाँकि बैंक ने अपने मुनाफ़े में भारी वृद्धि का ऐलान किया, लेकिन ध्यान से पढ़ने से पता चला कि 3 महीने में इसके डूबे क़र्ज़ डेढ़ गुना हो गये अर्थात 6.9% से बढ़कर 10% (हर 100 रुपये के क़र्ज़ में 10 रुपये डूब चुके हैं!) एक और ख़बर यह सामने आयी कि 2017 में सरकारी बैंक अब तक 81683 करोड के क़र्ज़ और बट्टे खाते में डाल या राइट ऑफ़ कर चुके हैं। पिछले 5 सालों में यह रक़म कुल 2 लाख 46 हज़ार करोड़ रुपये रही। इसने सरकार के इस दावे को झुठला दिया है कि डूबे क़र्ज़ों की समस्या पुरानी थी और अर्थव्यवस्था में तेज़ी के साथ अब यह सुलझ रही है।

इसका असर भी शीघ्र ही सामने आ गया - एसबीआई और अन्य बैंकों ने अपने बचत खाते में ब्याज़ दर आधा प्रतिशत कम कर दी और खातों पर लगने वाले शुल्क बढ़ा दिये। एक और सरकार ज़बरदस्ती आम मज़दूरों तक को अपनी मज़दूरी का मेहनताना बैंकों में जमा रखने के लिए मजबूर कर रही है, दूसरी ओर रोज़मर्रा के ख़र्च के लिए इसे निकालने में न सिर्फ़ रुकावट डाल रही है, बल्कि तरह-तरह के चार्ज लगाकर उनके पसीने की इस कमाई का एक हिस्सा ज़बरदस्ती काटकर उनके पेट पर दोहरी लात मार रही है, ताकि बड़े पूँजीपतियों की माँग के अनुसार बैंक उन्हें सस्ता क़र्ज़ और छूट दे, बल्कि धन्ना सेठों द्वारा मार ली गयी रक़म भी श्रमिकों, ग़रीब किसानों और निम्न मध्यवर्गीय जनता की जेब से खुले आम डकैती डालकर निकाल ली जाये। यही वजह है कि पूँजीपतियों का भोंपू ख़बरी मीडिया और भाड़े के विशेषज्ञ इसकी वाहवाही में जुट गये हैं। पूँजीपति वर्ग की सेवक मोदी सरकार से और उम्मीद भी क्या की जा सकती है!

11 अगस्त को ही औद्योगिक उत्पादन सूचकांक के भी आँकड़े सामने आये; नतीजा फिर वही जून में उत्पादन 0.1% गिरा। यह चार सालों में पहली गिरावट है। 23 में से 15 उद्योगों में गिरावट दर्ज की गयी, लेकिन सबसे अधिक गिरावट पूँजीगत उत्पाद (6.8%) और टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं (2.1%) में हुई अर्थात रोज़गार और आमदनी के प्रति सशंकित जनता रोज़मर्रा की ज़रूरी वस्तुएँ ख़रीदना तो बन्द नहीं कर सकती पर टिकाऊ, बड़ी वस्तुओं की ख़रीदारी से बच रही है और माँग में इस कमी को देखकर कोई उद्योगपति नयी उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करने में दिलचस्पी नहीं ले रहा। इण्डिया रेटिंग्स के मुख्य अर्थशास्त्री सुनील सिन्हा के अनुसार यह दिखा रहा है कि नोटबन्दी का नकारात्मक असर अभी जारी है और इसका प्रभाव पहले के अनुमान से कहीं अधिक भयंकर था। यह उद्योग और अर्थव्यवस्था के लिए बुरी ख़बर है।

11 अगस्त को ही सरकार ने अर्धवार्षिक आर्थिक सर्वेक्षण जारी किया जिसकी मुख्य बात थी कि अर्थव्यवस्था पर संकुचन या डिफ़्लेशन का दबाव है और जीडीपी में वृद्धि दर सरकारी अनुमान से कम रहने की सम्भावना है। इस संकुचन का अर्थ है कम माँग के चलते दाम न बढ़ा पाने की मज़बूरी से मुद्रास्फीति या महँगाई का नहीं बढ़ना। और विस्तार में जायें तो रिज़र्व बैंक और सरकार दोनों का विश्लेषण कहता है कि महँगाई की दर कम रहने की वजह एक तो कृषि उत्पादों के दामों में कमी है; दूसरे, माँग की कमी से अन्य उत्पादक दाम बढ़ाने में असमर्थ हैं, इसलिए महँगाई की दर 4% के नीचे आ गयी है। सरकार की ओर से आर्थिक सर्वेक्षण इस स्थिति से निपटने के लिए ब्याज़ दरों में भारी कमी का सुझाव दे रहा है। उधर रिज़र्व बैंक अपने नीति वक्तव्य में इससे असहमति जताते हुए महँगाई दर के घटने को अस्थायी मानकर कभी भी इसके पुनः बढ़ने का ख़तरा बता रहा है और उसे ब्याज़ दरों को ज़्यादा घटाना एक जोखिम का क़दम लगता है, क्योंकि उसकी नज़र में आज की स्थिति में महँगाई का बढ़ना बाज़ार माँग को पूरी तरह नष्ट कर संकट को और गहरा कर सकता है। अभी समझौते के तौर पर चौथाई प्रतिशत की कमी की गयी है, लेकिन सरकार और वित्तीय/औद्योगिक पूँजीपति और ज़्यादा कमी चाहते हैं। यह पूँजीपति वर्ग के ही दो संस्थानों के बीच एक विशेष स्थिति से निपटने के तरीक़े पर असहमति है। इसमें मेहनतकश जनता के हित की बात कोई पक्ष नहीं कर रहा, न कर सकता है।

इसी जगह ब्याज़ दरों को घटाने-बढ़ाने के सवाल को थोड़ा ओर गहराई से समझते हैं। पूँजीवादी बाज़ार में माँग की कमी से पैदा हुए अति-उत्पादन के संकट से निपटने के लिए अक्सर दो तरीक़े अपनाये जाते हैं। एक, घाटे के बजट द्वारा सरकारी ख़र्च या पूँजी निवेश में वृद्धि के द्वारा बाज़ार में धन की उपलब्धता या तरलता का प्रवाह बढ़ाकर माँग पैदा करना। वर्तमान सरकार पहले ही ऐसा कर रही है और इस वर्ष के सालाना बजट का तीन चौथाई से ज़्यादा भाग पहले 6 महीने में ही ख़र्च कर चुकी है। लेकिन सरकार इसके लिए बाज़ार से क़र्ज़ लेती है, जो ब्याज़ दरों को बढ़ाकर पूँजी की लागत को बढ़ा देता है। अतः निजी पूँजीपति इस नीति को पसन्द नहीं करते और ब्याज़ दरों में कमी से पूँजी की लागत को घटाकर मुनाफ़े की दर को बढ़ाने का समर्थन करते हैं। दूसरे, माना जाता है कि जमा राशि पर ब्याज़ दरों के घटने से लोग बचत के स्थान पर ख़र्च करना पसन्द करेंगे। फिर कम ब्याज़ दरों पर क़र्ज़ की उपलब्धता भी उन्हें किश्तों पर मकान, कार, टीवी, फ़्रिज जैसी चीज़ें लेने को प्रोत्साहित करेगी। इस सबसे बाज़ार में माँग और सम्पत्ति (ज़मीन, मकान, शेयर, बॉण्ड, आदि) की क़ीमतें बढ़ेंगी जिससे उत्पन्न सम्पन्नता का भाव भी बाज़ार में माँग बढ़ाकर अर्थव्यवस्था में तेज़ी लायेगा। इसलिए पूँजीपति वर्ग और उसके प्रवक्ता हमेशा ब्याज़ दरों में कमी की माँग करते हैं।

मगर इस प्रकार लायी गयी यह तेज़ी कभी स्थाई नहीं होती, क्योंकि संकट का मूल कारण क़र्ज़ का महँगा होना है ही नहीं। संकट का कारण है मज़दूरों की श्रम शक्ति द्वारा उत्पादित मूल्य के अधिकांश को पूँजी मालिकों द्वारा मुनाफ़ा, लगान या ब्याज़ के रूप में हस्तगत कर लेना और मज़दूर को उसमें से सिर्फ़ ज़िन्दा रहने लायक़ हिस्सा मिलना। इस परिस्थिति में आवश्यकताएँ होते हुए भी उनकी ख़रीदारी की शक्ति सीमित होती है, जबकि अपने-अपने मुनाफ़े के लिए सभी पूँजीपति उत्पादन को बढ़ाते जाते हैं, जो हमेशा अति-उत्पादन या माँग से अधिक उत्पादन के संकट को जन्म देता रहता है। वैसे भी लिया गया क़र्ज़ वापस भी करना ही होता है। इसलिए यह अस्थायी तेज़ी का चक्र हमेशा और भी तीव्र संकट की ओर ले जाता है। लेकिन इसका विस्तृत विश्लेषण और कभी।

उपरोक्त प्रस्तुत तथ्यों के आधार पर बग़ैर किसी और विश्लेषण के ही हम कह सकते हैं कि भारतीय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था गहरे संकट के दौर में है, कोई भाषण-नारे तथा प्रचार इसे छिपा नहीं सकते। ऊपर हमने उपभोक्ता विश्वास सर्वेक्षण द्वारा आम लोगों के द्वारा इस संकट को अपनी ज़िन्दगी में महसूस किये जाने का विवरण भी दिया ही था। आगे हम अर्थव्यवस्था के तीन मुख्य अंगों - विनिर्माण, सेवा और कृषि की स्थिति के ज़रिये मेहनतकश जनता पर इसके प्रभाव को और गहराई से समझेंगे।

सेवा क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा हिस्सा - लगभग 59% है। लेकिन इसमें कुल श्रमिकों के सिर्फ़ 26% को रोज़गार प्राप्त है। इसे समझने के लिए कुछ और देशों के साथ तुलना आवश्यक है। अमेरिका और ब्रिटेन में सेवा क्षेत्र अर्थव्यवस्था का 80% है और इतने ही लोग इसमें रोज़गार पाते हैं। ब्राज़ील, मेक्सिको के आँकड़े भी लगभग ऐसे ही हैं - जितना हिस्सा उतने रोज़गार। चीन में यह अर्थव्यवस्था का 49% है और रोज़गार 42%। इसका अर्थ है कि भारत में सेवा क्षेत्र में उत्पादित मूल्य की तुलना में बहुत कम लोगों को रोज़गार मिलता है अर्थात कम श्रमिक बहुत अधिक उत्पादन करते हैं। अतः इसमें श्रमिकों का शोषण बहुत अधिक है। यह बात कई लोगों को अजीब लग सकती है, क्योंकि अक्सर सेवा क्षेत्र के सफ़ेद कालर कर्मचारियों को अधिक वेतन का बहुत प्रचार सुना गया है। लेकिन यह अधिक वेतन मात्र कुछ लाख की संख्या तक सीमित है और आईटी, बैंक-वित्त, इ-कॉमर्स/कूरियर डिलीवरी वाले कर्मियों से लेकर होटल-रेस्टोरेण्ट तक के अधिकांश निचले स्तर के कर्मचारी उतना वेतन नहीं पाते। यहाँ कोई यूनियन नहीं होती, पेंशन-बोनस नहीं देना होता, मेडिकल आदि सुविधाएँ अत्यन्त सीमित हैं, नौकरी से निकालते वक़्त भी संगठित विनिर्माण उद्योगों की तरह वीआरएस आदि की तरह कोई एकमुश्त रक़म नहीं देनी पड़ती। दूसरी बात है कि इनमें काम के घण्टे बहुत अधिक हैं - 10-12 घण्टे के साथ छुट्टी के दिन भी काम करना यहाँ आम बात है। इसलिए इन क्षेत्रों के श्रमिक अपने मालिकों के लिए विनिर्माण क्षेत्र के मुक़ाबले अधिक अतिरिक्त मूल्य अर्थात मुनाफ़ा कमा कर देते हैं। यही वजह है कि न सिर्फ़ बहुत से भारतीय पूँजीपति इस क्षेत्र को निवेश के लिए बेहतर मानते हैं, बल्कि अमेरिका-यूरोप से भी सेवा क्षेत्र का बहुत सारा काम भारत में आया है, क्योंकि सस्ते भारतीय श्रमिकों के शोषण से इसमें अधिक मुनाफ़ा है।

विनिर्माण या मैन्युफ़ैक्चरिंग क्षेत्र कुल घरेलु उत्पाद में लगभग 28% का योगदान करता है और इसमें कुल श्रमबल के लगभग 22% को रोज़गार मिलता है। इस क्षेत्र को गति देकर बड़ी संख्या में नये रोज़गार सृजित करना मोदी सरकार का एक प्रमुख नीतिगत ऐलान था। मेक इन इण्डिया, स्टार्ट अप, स्किल इण्डिया जैसे कार्यक्रम इसी का अंग हैं। सेवा क्षेत्र की तरह ही यहाँ भी श्रम क़ानूनों में 'सुधार' के नाम पर श्रमिकों के संगठित होने के अधिकारों में कटौती, काम के घण्टों की सीमा हटाना, मालिकों को जब चाहे बिना मुआवज़े श्रमिक को निकालने का अधिकार देना, ब्याज़ दरों में कमी कर पूँजी लागत को घटाना, सस्ती ज़मीन उपलब्ध कराना, पर्यावरण की सुरक्षा के नियमों में ढील देना, आदि वे प्रमुख तरीक़े हैं जिनके द्वारा मोदी देशी-विदेशी पूँजी को श्रमिकों से अधिक अधिशेष और मुनाफ़ा प्राप्त करने का भरोसा देकर उन्हें उद्योगों में नये पूँजी निवेश के लिए आमन्त्रित कर रहे हैं। लेकिन बाज़ार में उपभोक्ता माँग की कमी और स्थापित क्षमता के ही अत्यन्त कम इस्तेमाल (70-72%) के कारण ब्याज़ दरों को 6 वर्ष के निम्नतम स्तर पर लाने के बाद भी यह पूँजी निवेश होता दिखायी नहीं दे रहा है और नया रोज़गार सृजन लगभग बन्द हो चुका है, बल्कि नोटबन्दी के बाद 15 लाख नौकरियाँ ख़त्म हो चुकी हैं।

कृषि क्षेत्र अर्थव्यवस्था में सबसे कम योगदान - 14% - करता है, लेकिन इसमें सबसे अधिक 52% लोग लगे हुए हैं। इसलिए इसमें संलग्न अधिकांश मज़दूर-किसानों की आय अत्यन्त न्यून है और वे जीवन की समस्त मूल ज़रूरतों से महरूम बस किसी तरह ज़िन्दा हैं। जिन राज्यों-क्षेत्रों में हरित क्रान्ति के बाद कृषि में तकनीकी विकास तुलनात्मक रूप से अधिक हुआ था, वहाँ अधिक पूँजी निवेश की आवश्यकता के चलते अधिसंख्य छोटे-सीमान्त किसानों के लिए कृषि घाटे का सौदा बन चुकी है और ये किसान और खेत मज़दूर कम आय में गुज़ारा न कर पाने के चलते क़र्ज़ में डूबते चले जा रहे हैं। आन्ध्रप्रदेश-तेलंगाना जैसे राज्यों में तो कुल ग्रामीण आबादी के 93% तक क़र्ज़ में डूबे हैं। इनमें भी आगे वर्गीय विश्लेषण करें तो लगभग सारे ही खेत मज़दूर-छोटे किसान क़र्ज़ में हैं, जबकि बड़े धनी किसान कम तादाद में। दूसरे, बड़े किसानों द्वारा लिये क़र्ज़ बैंकों की कम दरों पर कृषि में विकास हेतु पूँजी निवेश के लिए हैं, जबकि ग़रीब किसान-मज़दूरों के ज़्यादातर क़र्ज़ उपभोग या बीमारी जैसे संकटों से निपटने हेतु सूदखोरों-धनी किसानों से भारी ब्याज़ दरों पर लिये जाते हैं। इसीलिए ग्रामीण क्षेत्र में आत्महत्या के अधिकांश मामले इन्हीं ग़रीब किसान-मज़दूरों के तबक़े के हैं। हाल के वर्षों में धान, गेहूँ, गन्ना, आदि सभी फ़सलों की बुआई-रोपाई, निराई-गुड़ाई से लेकर कटाई-छिलाई, पेराई में यन्त्रीकरण की रफ़्तार जिस तरह तेज़ हुई है, उससे पूँजी निवेश की ज़रूरत बढ़ेगी और कृषि में श्रमिकों की माँग कम होगी। कुछ किसान श्रम की कम आवश्यकता तथा अधिक पूँजी निवेश के सहारे अधिक ज़मीन पर कृषि कार्य में सक्षम होंगे - ख़रीदकर या पट्टे/ठेके पर लेकर - तथा कम लागत और परिमाण की मितव्ययता से अधिक लाभ अर्जित कर पायेंगे, किन्तु अधिकांश मज़दूर-किसानों का आर्थिक संकट और बढ़ने वाला है, और गाँवों से शहरों की ओर पलायन तेज़ होगा। मोदी सरकार का प्रस्तावित कृषि भूमि लीज़िंग कानून इसी प्रक्रिया को औपचारिक बनाने और तेज करने के मकसद से लाया जा रहा है।

निष्कर्ष यह कि तमाम मनभावन नारों और लुभावनी स्कीमों वाले नरेन्द्र मोदी के पास ऐसी कोई नीति नहीं है, जो हमारे मुल्क़ की बहुसंख्यक आबादी अर्थात मज़दूर, छोटे किसान और निम्न मध्य तबक़े के जीवन में कोई सुधार ला सके। ऐसा मुमकिन भी नहीं था, क्योंकि यह सरकार पूँजीपति वर्ग की विश्वस्त प्रबन्धक के रूप में ही अस्तित्व में आयी है और उसके हितों की पूर्ति में काम करने के अतिरिक्त इससे कुछ और उम्मीद करना नासमझी ही होगी।

# भारतीय और अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन पर दो विचारोत्तेजक व्याख्यान

'अक्टूबर क्रान्ति शतवार्षिकी समिति' और 'अरविन्द स्मृति न्यास' की ओर से पिछली 22 व 23 जुलाई को मार्क्सवादी चिन्तक और ऐक्टिविस्ट **शशि प्रकाश** के दो व्याख्यान आयोजित किये। पहले व्याख्यान का विषय था **'भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन: इतिहास, समस्याएँ और सम्भावनाएँ'** और दूसरे का विषय था **'समाजवाद की समस्याएँ: बीसवीं शताब्दी की क्रान्तियों के अनुभव'**।

अपने पहले व्याख्यान में उन्होंने कहा कि भारत में वैचारिक और सांगठनिक ग़लतियों के कारण टूट और बिखराव के शिकार कम्युनिस्ट आन्दोलन को आज नये सिरे से खड़ा करने की ज़रूरत है। आज देश की सत्ता पर काबिज फासीवाद एक धुर-प्रतिक्रियावादी सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन है जिसे कैडर-आधारित सांगठनिक तंत्र के जरिए ज़मीनी स्तर से खड़ा किया गया है। मेहनतकशों और प्रगतिशील मध्यवर्ग के बीच व्यापक आधार वाला सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन खड़ा करके ही इसे परास्त किया जा सकता है।

करीब चार दशक से कम्युनिस्ट आन्दोलन में सक्रिय रहे तथा इस समय मार्क्सवादी विमर्श की पत्रिका 'द ऐन्विल' के सम्पादक शशि प्रकाश ने कहा कि भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन ने लगभग एक शताब्दी की यात्रा के दौरान गौरवशाली संघर्षों और शौर्यपूर्ण बलिदानों के अनेक कीर्तिस्तम्भ स्थापित किये लेकिन एक अहम सवाल यह है कि भारतीय पूँजीपति वर्ग और उसकी प्रतिनिधि कांग्रेस के हाथों से राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथों में क्यों नहीं ले सका। पिछले ढाई दशकों के दौरान नयी आर्थिक नीतियों के कारण जनता में भारी असन्तोष पैदा हुआ है और फासिस्ट शक्तियाँ निरन्तर मज़बूत होते हुए सत्ता में पहुँच गयी हैं। फिर भी कम्युनिस्ट धारा कोई प्रभावी प्रतिरोध खड़ा करने में अक्षम है। एक समय व्यापक जनाधार वाला कम्युनिस्ट आन्दोलन आज बुरी तरह टूट-बिखराव का शिकार क्यों है? इसके कारण हम किसी ऐतिहासिक संयोग या कुछ व्यक्तियों की भूमिका में नहीं ढूँढ़ सकते। ऐसा करना अनैतिहासिक होगा। इसके कारणों पर गहराई में जाकर विचार करने की ज़रूरत है।

उन्होंने कहा कि पिछले तीन-चार दशकों में दुनिया व्यापक परिवर्तनों से गुज़री है। विश्व पूँजीवाद की संरचना, कार्यप्रणाली और उत्पादन-प्रक्रिया में तथा भारत जैसे उत्तर-औपनिवेशिक देशों की सामाजिक-आर्थिक संरचना में व्यापक बदलाव आये हैं। उद्योग और कृषि, शहरों और गाँवों सभी जगह उत्पादन व शोषण, वर्गों की संरचना और सामाजिक समीकरण पहले जैसे नहीं रहे हैं। इन बदलावों को समझने और मज़दूर आन्दोलन तथा सामाजिक क्रान्ति की नई रणनीति और रणकौशल विकसित करने में कम्युनिस्ट आन्दोलन अब तक विफल रहा है।

भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास की विस्तार से चर्चा करते हुए शशि प्रकाश ने कहा कि इसकी सबसे बड़ी कमी विचारधारात्मक कमज़ोरी रही है । इसी मुख्य कारण के चलते यहाँ के कम्युनिस्ट मार्क्सवादी सिद्धान्त को भारत की ठोस परिस्थितियों में रचनात्मक ढंग से लागू करने में चूकते रहे, और अक्सर अन्तरराष्ट्रीय नेतृत्व और बड़ी एवं अनुभवी बिरादर पार्टियों पर वैचारिक रूप से निर्भर रहे। कम्युनिस्ट नेतृत्व ने औपनिवेशिक भारत के उत्पादन-सम्बन्धों और जाति व्यवस्था, स्त्री प्रश्न और राष्ट्रीयताओं का प्रश्न सहित ऊपरी संरचना के सभी पहलुओं का ठोस अध्ययन करके भारतीय क्रान्ति की रणनीति एवं आम रणकौशल के निर्धारण की स्वतन्त्र कोशिश नहीं की। वह संयुक्त मोर्चा, मज़दूर आन्दोलन और अन्य प्रश्नों पर बार-बार कभी दक्षिणपंथ की ओर तो कभी अतिवाम के भटकाव का शिकार होता रहा। अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में होने वाले भटकाव और भारत-विषयक ग़लत या असन्तुलित मूल्यांकन भी यहाँ के आन्दोलन को प्रभावित करते रहे।

नक्सलबाड़ी का जन-उभार भारत में क्रान्तिकारी वामपन्थ की नयी शुरुआत और संशोधनवादी राजनीति से निर्णायक विच्छेद की एक प्रतीक घटना सिद्ध हुआ। इसने मज़दूर-किसान जनता के सामने राज्यसत्ता के प्रश्न को एक बार फिर केन्द्रीय प्रश्न बना दिया। तेलंगाना-तेभागा-पुनप्रा वायलार और नौसेना विद्रोह के दिनों के बाद, एक बार फिर देशव्यापी स्तर पर जनसमुदाय की क्रान्तिकारी ऊर्जा और पहलक़दमी निर्बन्ध हुई, लेकिन "वामपन्थी" दुस्साहसवाद के विचारधारात्मक विचलन और विरासत के तौर पर प्राप्त विचारधारात्मक कमज़ोरी के कारण भारतीय सामाजिक-आर्थिक संरचना एवं राज्यसत्ता की प्रकृति की ग़लत समझ और उस आधार पर निर्धारित क्रान्ति की ग़लत रणनीति एवं आम रणकौशल के परिणामस्वरूप यह धारा आगे बढ़ने के बजाय गतिरोध और विघटन का शिकार हो गयी। 1969 में जिस भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मा-ले) की घोषणा हुई, वह पिछले अड़तालीस वर्षों में कई ग्रुपों और संगठनों में बँटी हुई, एकता और फूट के अनवरत सिलसिले से गुज़रती रही है। नक्सलबाड़ी की मूल प्रेरणा से गठित जो कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन भाकपा (मा-ले) में शामिल नहीं हुए थे, उनकी भी यही स्थिति रही है। इन सभी कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों के जिस समूह को कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर कहा जाता रहा है, उनमें से कुछ आज भी "वामपन्थी" दुस्साहसवादी निम्न-पूँजीवादी लाइन के संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण को अमल में ला रहे हैं, कुछ दक्षिणपन्थी सिरे की ओर विपथगमन की प्रक्रिया में हैं तो कुछ सीधे संसदमार्गी वामपन्थियों की पंगत में जा बैठे है, कुछ का अस्तित्व बस नाम को ही बचा हुआ है तो कुछ बाक़ायदा विसर्जित हो चुके हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो नववामपन्थी "मुक्त चिन्तन" की राह पकड़ चिन्तन कक्षों में मुक्ति के नये सूत्र ईजाद कर रहे हैं।

बाद में सवाल-जवाब के दौर में मार्क्सवादी विचारधारा पर हो रहे हमलों की चर्चा करते हुए शशि प्रकाश ने कहा कि इसके बुनियादी सिद्धान्तों को कोई भी ग़लत नहीं ठहरा सका है। लेकिन इन्हें समझने और देशकाल के अनुसार लागू करने में ग़लतियाँ हुई हैं। भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन के पुनरुत्थान के लिए, ज़रूरी है कि विभिन्न माध्यमों से बड़े पैमाने पर प्रगतिशील विचारों और संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया जाये, अतीत की ग़लतियों के सार-संकलन और नई परिस्थितियों के विश्लेषण से आगे का रास्ता विकसित किया जाये। युवाओं को कम्युनिस्ट आन्दोलन से जोड़ने पर विशेष ज़ोर देना होगा जो नये विचारों को लेकर व्यापक मेहनकश अवाम के बीच में जायेंगे। साम्प्रदायिक फासीवाद फ़ौरी चुनौती के मुकाबले के लिए भी ज़रूरी है कि मेहनतकशों और मध्यवर्ग के प्रगतिशील तबकों के बीच निरन्तर वैचारिक तथा सांस्कृतिक काम किया जाये और उन्हें बुनियादी मुद्दों पर संगठित किया जाये। इसके साथ ही पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध लम्बी लड़ाई के लिए उन्हें शिक्षित और संगठित करने के उद्देश्य से हज़ारों नौजवानों को मज़दूरों और ग़रीबों की बस्तियों में जीवन बिताने के लिए तैयार करना होगा।

अपने दूसरे व्याख्यान में शशि प्रकाश ने कहा कि 1917 में हुई अक्टूबर क्रान्ति ने बीसवीं सदी को एक नयी शक्ल दी। पूरी दुनिया में शोषण और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष को इसने प्रेरणा और दिशा दी। भारत में 1917 से 1930 के बीच हिन्दी और अन्य भाषाओं की पत्रिकाओं में लेनिन और सोवियत क्रान्ति, सोवियत संघ में स्त्रियों की स्थिति, कृषि के सामूहिकीकरण, पंचवर्षीय योजनाओं आदि के बारे में सैकड़ों लेख, कविताएँ आदि छपे। भगत सिंह और उनके साथियों ने हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन नाम रखते हुए मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर सर्वहारा वर्ग की पार्टी बनाने की घोषणा की।

उन्होंने कहा कि अक्टूबर क्रान्ति के बाद पहली बार ऐसी राजसत्ता कायम हुई जिसमें निजी स्वामित्व की व्यवस्था पर चोट की। उत्पादन के साधनों का सामूहिकीकरण किया गया और कुछ ही वर्षों में करोड़ों लोगों के जीवनस्तर को कई गुना पर उठाया गया। 1918 की विवाह और परिवार संहिता में पहली बार स्त्रियों को बराबर के अधिकार दिये गये। जीवन के हर क्षेत्र में उन्हें न केवल काम करने का अधिकार दिया गया बल्कि चूल्हे चौखट से उन्हें मुक्त करने के लिए सामूहिक भोजनालयों से लेकर बड़े स्तर पर शिशु शालाओं का निर्माण भी किया गया। वेश्यावृति, नशाखोरी, बेरोज़गारी, भीख आदि क्रान्ति के कुछ वर्षों बाद समाज से समाप्त हो गये। अक्टूबर क्रान्ति केवल 500 वर्ष के पूँजीवाद के विरुद्ध क्रान्ति नहीं थी, वह 5000 वर्षों के पूरे वर्ग समाज के विरुद्ध एक सतत क्रान्ति की शुरुआत का एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर थी।

समाजवाद की समस्याओं की चर्चा करते हुए शशि प्रकाश ने कहा कि हर मौलिक क्रान्ति की तरह इस पहली समाजवादी क्रान्ति की भी कुछ समस्याएँ थीं। क्रान्ति के बाद निजी मालिकाने का काफ़ी हद ख़ात्मा तो हो गया लेकिन समाज में मानसिक श्रम और शारीरिक श्रम के बीच, कृषि और उद्योग के बीच, शहर और गाँव के बीच के अन्तर जैसी असमानताएँ बनी हुई थीं। छोटे पैमाने का निजी उत्पादन, मूल्य का नियम और मज़दूरी की व्यवस्था बने हुए थे। लोगों की सोच, संस्कार और आदतों में पूँजीवादी मूल्य-मान्यताएँ भी रातों-रात नहीं ख़त्म होती। निश्चय ही कुछ सैद्धान्तिक ग़लतियाँ और मार्क्सवाद के सिद्धान्तों पर अमल में व्यावहारिक ग़लतियाँ भी हुईं। पूँजीवाद की पुनर्स्थापना का प्रयास करने वाले तत्वों को इस ज़मीन पर अपनी ताक़त बढ़ाने का अवसर मिला और 1956 में सोवियत संघ में समाजवाद के लेबल के तहत पूँजीवाद की बहाली हो गयी तथा 1989 में लेबल भी हटाकर खुला पूँजीवाद आ गया।

उन्होंने कहा कि चीन में 1949 में होने वाली नवजनवादी क्रान्ति के बाद वहाँ इन समस्याओं पर लम्बा वाद-विवाद चला और 1966-67 में शुरू हुई सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के द्वारा पूँजीवाद की वापसी रोकने का एक रास्ता प्रस्तुत किया गया। इसमें कहा गया कि समाजवादी व्यवस्था कायम होने के बाद ऊपरी संरचना में सतत क्रान्ति जारी रखनी होगी और एक नया मानव बनाने का काम सर्वोपरि हो जायेगा। हालाँकि उस समय तक चीन में भी वर्ग शक्ति संतुलन पूँजीवादी पथगामियों के पक्ष में झुक गया था और 1976 के बाद से वहाँ भी बाजार समाजवाद के नाम पर पूँजीवाद की पुनर्स्थापना की शुरुआत हो चुकी थी।

शशि प्रकाश ने कहा कहा कि आज के मार्क्सवादी "पुराने" को समझे बिना "नये" का सन्धान नहीं कर सकते हैं; उन्हें अतीत को ख़ारिज करने या अनालोचनात्मक तौर पर अपनाने के बजाय उसके साथ एक आलोचनात्मक सम्बन्ध स्थापित करना ही होगा। आज के कम्युनिस्टों के लिए अक्टूबर क्रान्ति की युगान्तरकारी घटना, पहले समाजवादी प्रयोग और पहले व्यवस्थित मज़दूर राज्य के रूप में आज भी एक ऐतिहासिक सन्दर्भ बिन्दु का काम करती है। दुनिया को हिला देने वाली इस घटना की समकालीनता को समझे बग़ैर न तो आज के पूँजीवाद की विशिष्टताओं को समझा जा सकता है और न ही हम इक्कीसवीं सदी की नयी समाजवादी क्रान्तियों की समझदारी विकसित कर सकते हैं। इसीसे हमारे सामने यह बेहद प्रासंगिक प्रश्न भी खड़ा हो हो जाता है कि इक्कीसवीं सदी की नयी समाजवादी क्रान्तियों में 'नया' क्या है? विशेष तौर पर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पूँजीवाद की कार्यप्रणाली में आये बदलावों को हम कैसे समझें? आज के कम्युनिस्ट आन्दोलन के लिए इन बदलावों के क्या निहितार्थ हैं?

आज दुनिया की परिस्थितियाँ बहुत बदल चुकी हैं। आज के युग की क्रान्तियाँ चीन की नवजनवादी क्रान्ति जैसी या हूबहू अक्टूबर क्रान्ति जैसी नहीं हो सकतीं। आज केवल देशी पूँजीवाद के विरुद्ध नहीं बल्कि साम्राज्यवाद और पूँजीवाद विरोधी क्रान्तियाँ होंगी। पूँजीवाद आर्थिक रूप से संकटग्रस्त है लेकिन इसकी राज्यसत्ता तथा इसके सामाजिक अवलम्ब आज पहले से कहीं ज्यादा मज़बूत और गहरे जड़ जमाये हुए हैं। इक्कीसवीं सदी की नयी समाजवादी क्रान्तियों को अंजाम देने के लिए आज मुक्त चिंतन और कठमुल्लावाद से बचते हुए मार्क्सवाद को रचनात्मक ढंग से अपने देश की परिस्थितियों में लागू करना होगा। आज पूँजीवाद और साम्राज्यवाद पूरी दुनिया में आक्रामक हैं लेकिन जगह-जगह इनके प्रतिरोध के आन्दोलन भी ज़ोर पकड़ रहे हैं जिन्हें सही दिशा की तलाश है। आने वाला समय पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्तियों का होगा।

जयशंकर प्रसाद सभागार में आयोजित दोनों व्याख्यानों में अच्छी संख्या में बुद्धिजीवी, सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता और छात्र उपस्थित थे। पहले व्याख्यान में अध्यक्षता वरिष्ठ कवि नरेश सक्सेना ने की। दूसरे व्याख्यान की अध्यक्षता गिरि विकास अध्ययन संस्थान के निदेशक प्रो. सुरिन्दर कुमार को करनी थी लेकिन अस्वस्थ के कारण वे नहीं आ सके, हालाँकि पहले दिन वे मौजूद रहे। व्याख्यान में प्रस्तुत बातों पर सवाल-जवाब का भी लम्बा दौर चला।

**– बिगुल संवाददाता**

# राष्ट्र सेविका समिति के ज़रिये स्त्रियों को आज्ञाकारी आधुनिक दासियों में बदलने की आरएसएस की कोशिशें

'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' घोर दलित विरोधी, मज़दूर विरोधी, कम्युनिस्ट विरोधी, तर्कशीलता विरोधी, मुसलमानों और ईसाइयों आदि विरोधी संगठन तो है ही, बल्कि यह संगठन घोर स्त्री विरोधी भी है, जो औरत को मर्द की आज्ञाकारी और बच्चों की देखभाल करने वाली किसी दासी से अधिक कुछ नहीं समझती और हिन्दु उच्च जाति के मर्दवादी अहं को पोषित करती है। इस कारण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सांगठनिक ढाँचे में इसके पूरे इतिहास के दौरान किसी पद पर तो दूर की बात, बल्कि संगठन में भी कोई स्त्री नहीं रही (दलित भी संघ में कोई पद नहीं हासिल कर सकते)। संघ सैद्धान्तिक तौर पर औरत-मर्द के बीच की ग़ैर-बराबरी, जिसमें कि मर्द का औरत पर प्रभुत्व हो, को मानता है और अपने व्यवहार में भी इसे लागू करता है। इस कारण संघ ने 1936 में औरतों का एक भिन्न संगठन 'राष्ट्र सेविका समिति' बनाया था। इसकी स्थापना के समय, जिस स्त्री लक्ष्मीबाई केलकर, ने यह संगठन संघ के आदेश पर स्थापित किया था, उसने एक बार हेडगेवार से सवाल पूछा था कि आरएसएस में ही औरतों और मर्दों को इकट्ठा शामिल क्यों नहीं किया जा सकता? लेकिन हेडगवार इस विचार के सख्त खिलाफ़ थे और प्राचीन भारतीय संस्कृति और वेदों की दुहाई देकर केलकर को सहमत करवा लिया था।

कहने को यह 'राष्ट्र सेविका समिति' है, लेकिन इसे कण्ट्रोल आरएसएस करता है। आरएसएस के ज़्यादातर मर्द अपनी औरतों को इस समिति में भेजते हैं, ताकि औरतों को "संस्कार" सिखाये जा सकें। संस्कार सिखाये जाने से संघ का मतलब औरतों को पति की जी-हज़ूरी, बच्चे और घर की देखभाल आदि संस्कारों की शिक्षा से है। इसके बिना यह समिति औरतों को कोई भी अधिकार देने के हक़ में नहीं है, क्योंकि संघ को यह स्वीकार नहीं।

राष्ट्र सेविका समिति के पर्दे के पीछे छुपे हुए संघ के औरत विरोधी विचारों को अक्टूबर 2016 में हुए राष्ट्रीय सेविका समिति के एक ट्रेनिंग कैम्प (ऐसे कैम्पों में भी वही संस्कार सिखाये जाते हैं) के कुछ उदाहरणों से देखा जा सकता है। दिल्ली में हुए इस कैम्प में मुख्य मेहमान के रूप में मोहन भागवत आये थे। उनके एक घण्टे के भाषण में आरएसएस की औरत सम्बन्धी पूरी सोच देखी जा सकती है। भागवत के भाषण में समाज में स्त्री की बुरी हालत और उसकी समस्याओं, उस पर होते घरेलू दमन, बलात्कार, छेड़-छाड़ आदि से सम्बन्धित या इनके हल सम्बन्धी कोई बात नहीं आयी। वैसे भागवत अगर हल की बात करते भी तो अपनी वही पुरानी बात दोहराते कि "औरतें लक्ष्मण रेखा पार करेंगी तो बलात्कार तो होगा ही"। उनका कहना था कि जब तक भारत की मातृ-शक्ति (स्त्री शक्ति

नहीं कहता, क्योंकि इनके लिए औरत बस माँ और पत्नी आदि रूपों में एक दासी है) सक्रिय होकर आगे नहीं आती तब तक भारत अपनी ताक़त और शुद्ध गौरव द्वारा विश्व के दिशा-निर्देशन का काम नहीं कर सकता। यहाँ आगे आने और सक्रिय होने से भागवत का मतलब एक संस्कारी औरत बनकर घर, बाल-बच्चे और पति की देख-रेख के लिए आगे आने के सिवा और कुछ नहीं है। आगे वह औरतों को आदेश के लहजे में कहते हैं कि औरतों की मुख्य और केन्द्रीय भूमिका बच्चों को संस्कार देना है, जिससे समाज और राष्ट्र को ताक़त मिलेगी और हमारी कुटुम्ब व्यवस्था विश्व का ध्यान खींचेगी। यह था इस ट्रेनिंग का केन्द्रीय अर्थ।

नवम्बर 2016 में समिति की जनरल सेक्रेटरी सीता आनन्दनम ने औरतों की विभिन्न शाखाएँ होने के बारे में कहा था - "हमारी संस्कृति औरत-मर्द की इकट्ठी शाखाओं की आज्ञा नहीं देती, इस कारण हमारी अलग शाखाएँ हैं।" इस सवाल पर कि हिन्दु औरतों को जायदाद में हिस्सा क्यों नहीं मिलता भले ही देश की प्रत्येक औरत का यह महत्वपूर्ण अधिकार काग़ज़ों में दिया हुआ है, उन्होंने कहा - हमारी रीतियों और औरतों में एक सन्तुलन होना चाहिए जो शास्त्रों के अनुसार हो। इससे परिवार टूट जायेंगे और भाई बहनों के विरुद्ध हो जायेंगे। यही नहीं बल्कि उन्होंने यह तक कह दिया कि "विवाहित सम्बन्ध में रेप नाम की कोई चीज़ नहीं है। विवाह एक पवित्र रिश्ता है। सहअस्तित्व ज़रूर सुख की ओर ले जायेगा। अगर हम सुख के इस संकल्प को समझने के योग्य हो गये तो हर चीज़ सीधी हो जायेगी।" (इण्डियन एक्सप्रेस, 11 नवम्बर 2016) ऐसा लगता था, जैसे सीता आनन्दनम के मुँह से गोलवलकर बोल रहे हों। असल में राष्ट्र सेविका समिति आज भी गोलवलकर की किताब 'बंच ऑफ़ थॉट्स' के उन विचारों पर कायम हैं – "औरतें पूरी तरह माएँ हैं और उन्हें बच्चों के पीछे-पीछे रहना चाहिए" यानी संघ औरत को इंसान मानने के लिए तैयार नहीं, जिसकी अपनी भी कुछ इच्छाएँ होती हैं। वे भी अपने पैरों पर खड़े होना चाहती हैं, अपनी इच्छा से हँसना और खेलना चाहती हैं। वे भी सपनों के पँख लगाकर जीवन के आकाश में आज़ादी से उड़ना चाहती हैं। लेकिन संघ उनके पँख काटकर उनको पिंजरे में बन्द कर देना चाहता है।

इन फासिस्टों का असली गुरु हिटलर भी यही कहता था कि जर्मन औरतों का एक ही काम है, जर्मन फौज के लिए श्रेष्ठ सैनिकों की माँएँ बनना।

**- कुलदीप**

# "संस्कारी देशभक्तों" के कुसंस्कारी शोहदे – सत्ता की शह पर बेख़ौफ़ गुण्डे!

भारत के सबसे सुरक्षित माने जाने वाले शहरों में से एक चण्डीगढ़, जिसमें हर 200 मीटर पर सीसीटीवी कैमरे लगे होने तथा नागरिक सुरक्षा हेतु पुलिस चौकसी के दावे किये जाते हैं, में 5 अगस्त की रात हरियाणा के भाजपा अध्यक्ष सुभाष बराला के शोहदे विकास बराला ने अपने दोस्त के साथ नशे में धुत होकर आईएएस वीरेन्द्र कुण्डू की बेटी वर्णिका कुण्डू का देर तक पीछा किया। पीछा करते वक़्त कई दफ़ा अपनी कार को वर्णिका की कार के आगे लगाकर रोकने की कोशिश की, कई बार नीचे उतरकर वर्णिका की कार के शीशे पर हमले कर अपहरण की नाकाम कोशिश की। वर्णिका के ही शब्दों में इस ख़ौफ़नाक घटना को बयान करें तो वह इस बात के लिए ख़ुद को ख़ुशक़िस्मत मानती हैं कि आज उनकी लाश किसी नाले से बरामद नहीं हुई। मौक़े पर पहुँची पुलिस ने दोनों को गिरफ़्तार तो किया परन्तु जल्द ही सारी ग़ैर-जमानती धाराएँ हटाकर थाने से ही जमानत पर रिहा कर दिया। थाने में मौजूदगी के दौरान पुलिस ने विकास बराला की ख़ूब ख़ातिरदारी भी की और वारदात की सड़क पर लगे 9 सीसीटीवी कैमरों में से 6 की फ़ुटेज ग़ायब करवा दी गयी।

"बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" वाली भाजपा के प्रदेश अध्यक्ष ने बेटे को बेटियों के बारे में कैसे संस्कार दिये हैं,

इस घटना से सहज ही समझा जा सकता है व साथ ही पानी की तरह साफ़ केस में सत्ता पक्ष के लोग तरह-तरह की दलीलें देकर आरोपी को बचाने की हरसम्भव कोशिश कर रहे हैं और पूरे घटनाक्रम को देखते हुए सरकारी दबाव के चलते पुलिस की मिलीभगत भी अब किसी से छिपी नहीं है। हालाँकि बाद में देश-भर में चण्डीगढ़ पुलिस के इस ग़ैर-ज़िम्मेदाराना व सत्तापरस्त रवैये के खिलाफ़ उठी विरोध की आवाज़ों ने पुलिस को फिर से धाराएँ लगाकर दोनों को गिरफ़्तार करने पर मजबूर कर दिया। मामले की लीपापोती करने के लिए भाजपा ने हमेशा की तरह दोहरी नीति (जिसे दोगली कहना ज़्यादा उचित होगा) अपनायी है। एक तरफ़ तो अपनी धूमिल होती छवि को बचाने की पेशोपेश में हरियाणा भाजपा अध्यक्ष सुभाष बराला वर्णिका को "अपनी बेटी" कहकर बेटे के खिलाफ़ जाने की नौटंकी कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर भाजपा के तमाम नेता वर्णिका को ही हिदायतें देने और उसके चरित्रहरण की नापाक कोशिशें कर रहे हैं। हरियाणा भाजपा उपाध्यक्ष रामवीर भट्टी ने तो वर्णिका को ही रात में बाहर ना निकलने की नसीहत दे डाली। भाजपा प्रवक्ता शाइना एनसी ने ट्विटर पर वर्णिका का पुराना फ़ोटो डालकर ये जताने की कोशिश की कि विकास बराला वर्णिका का पुराना परिचित है, जिसका वर्णिका ने तुरन्त ही खण्डन कर दिया कि फ़ोटो में उनके साथ उनका बहुत अच्छा दोस्त है ना कि विकास बराला। ये तो मात्र एक-दो प्रातिनिधिक उदाहरण हैं, बल्कि इन्होंने तो सोशल मीडिया पर अफ़वाहों का ताँता लगा दिया है। ग़ौरतलब है कि हरियाणा के मुख्यमन्त्री मनोहरलाल खट्टर ने महिला आज़ादी के सवाल पर एक बार बयान दिया था कि उन्हें आज़ादी चाहिए तो वे नंगी घूमें, यह बयान संघी मुख्यमन्त्री की महिलाओं की आज़ादी के प्रति "प्रतिबद्धता" को भी दर्शाता है। अगर याद हो तो भाजपा के ही मन्त्री कर्नाटक विधानसभा में पोर्न वीडियो देखते पकड़े गये थे, जिन पर पार्टी की तरफ़ से कोई कार्रवाई नहीं हुई थी। इनके कितने ही मन्त्री हत्या और बलात्कार जैसे संगीन अपराधों में अभियुक्त हैं, ऐसे में इनसे कोई भी उम्मीद रखना स्वयं को धोखा देने से ज़्यादा कुछ नहीं है।

आठ अगस्त 2017 को केन्द्रीय गृह राज्य मन्त्री हंसराज गंगाराम अहीर द्वारा लोक सभा में दी गयी जानकारी के अनुसार साल 2016 में पूरे देश में महिलाओं द्वारा स्टॉकिंग (पीछा और छेड़खानी करने) के 7132 मामले दर्ज कराये गये थे। डाटा वेबसाइट इण्डिया स्पेण्ड ने अहीर के दिये आँकड़ों के आधार पर रिपोर्ट की है कि साल 2014 की तुलना में साल 2016 में पूरे देश में छेड़खानी की घटनाएँ 54 प्रतिशत ज़्यादा हुईं। हालाँकि जहाँ ऐसी घटनाओं की संख्या तीन साल में बढ़ी है, वहीं दूसरी तरफ़ इनके लिए सज़ा पाने की दर पहले से कम हुई है। भाजपा सरकार के सत्ता में आने के बाद से ही महिला विरोधी अपराधों तथा दलित व अल्पसंख्यकों पर हमलों में बेतहाशा बढ़ोत्तरी साफ़ दर्शा रही है कि साम्प्रदायिक गुण्डा गिरोहों को संघी सरकार की शह है। सत्ता की शह पाये हुए गुण्डा-गिरोह व नवधनाढ्य शोहदे बेलगाम छुट्टे घूम रहे हैं। जिस देश का प्रधानमन्त्री ऐसे संवेदनशील मुद्दों पर दो शब्द बोलने की जहमत न उठाये या ज़ुबानी जमाख़र्च करके छुट्टी पा ले तो इसका साफ़-सीधा मतलब यही है कि अपने गुर्गों को उसका मौन समर्थन हासिल है। वर्णिका के ही शब्दों में जब ये लोग आर्थिक व सामाजिक रूप से समृद्ध वर्ग की महिलाओं से ऐसा सलूक करने की हिमाक़त कर सकते हैं तो आम मेहनतकश पृष्ठभूमि से आने वाली महिलाओं की तो बिसात ही क्या! उन्हें तो ये अपनी जागीर से अधिक नहीं समझते। लोगों का आज़ादी और इज़्ज़त से जीने का अधिकार महज़ काग़ज़ी मालूम होता है। इनका अगला निशाना आप भी हो सकते हैं और ज़रूरी नहीं कि आप भी वर्णिका की तरह ख़ुशक़िस्मत हों।

**सुनील, हरियाणा**

# कॉमरेड अमर नदीम को क्रान्तिकारी श्रद्धांजलि

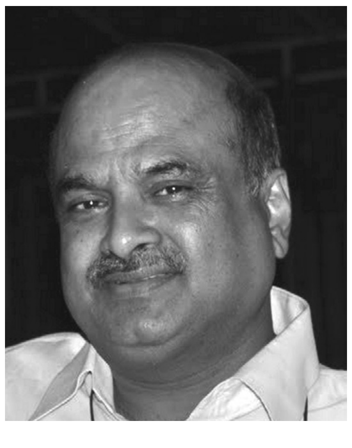

9 अगस्त की शाम हृदय गति रुकने के कारण हिन्दी के कवि, शायर, अनुवादक और हमारे प्रिय कॉमरेड अमर नदीम का देहान्त हो गया। कॉमरेड अमर की वाम प्रतिबद्धता जीवनपर्यन्त अक्षुण्ण रही। कॉमरेड अमर का प्रारम्भिक जीवन उत्तर प्रदेश के हाथरस ज़िले में बीता। उनका जन्म 1 अगस्त 1955 को हाथरस में हुआ। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने के बाद वे उच्च शिक्षा के लिए आगरा चले आये। उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी में एमए किया। हालाँकि किशोरावस्था से ही कॉमरेड अमर का साहित्य के प्रति रुझान था और अपने छात्र जीवन के दौरान ही उन्होंने कविताएँ लिखनी शुरु कर दी थीं। एक जगह उन्होंने लिखा है - "कविता मेरे लिए हमेशा से ही मन की बात कहने का माध्यम रही है, मुझे लगता है कि कविता के माध्यम से कही गयी बात अक्सर सही पते पर पहुँच जाती है..."

कॉमरेड अमर साहित्य की दुनिया से होते हुए राजनीति की ओर आकर्षित हुए। उनका संवेदनशील मन वर्ग समाज की विसंगतियों और उसके अत्याचार-अनाचार के विरुद्ध रास्ता तलाशने के लिए किशोरावस्था से ही उन्हें विवश किया करता था। अन्ततः मार्क्सवाद के क्रान्तिकारी दर्शन और राजनीति में उन्हें वह रास्ता मिल गया, जिस पर वे ताउम्र चलते रहे, कभी पल-भर के लिए भी नहीं डिगे। संयोग कुछ ऐसा बना कि 1984 में कॉमरेड अमर सीपीएम (मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी) में शामिल हुए और पहले युवा मोर्चा और फिर किसान सभा में सक्रिय हुए। लेकिन जल्दी ही कॉमरेड अमर को यह महसूस होने लगा कि सीपीएम का नेतृत्व कथनी में भले ही मार्क्सवाद की दुहाई देता हो, लेकिन आचरण में वस्तुतः सामाजिक जनवादी और संशोधनवादी व्यवहार ही करता है। वर्ष 1987 तक आते-आते उन्होंने सीपीएम से इस्तीफ़ा दे दिया। उन्होंने स्पष्ट महसूस किया कि सीपीएम का नेतृत्व और उनसे जुड़े अधिकांश बुद्धिजीवी गुटबन्दियों, अवसरवाद और समझौतापरस्ती में आकण्ठ डूबे हुए हैं। उन्होंने देखा कि पार्टी में बहस-मुबाहसे से लेकर मार्क्सवाद के अध्ययन और राजनीतिक सरगर्मियों की संस्कृति को हतोत्साहित किया जाता है। कानपुर में चल रही एक पार्टी बैठक का वाक़या याद करते हुए उन्होंने एक बार बताया था कि पार्टी की चुनावी रणनीति के सम्बन्ध में जब उन्होंने कुछ असहज करने वाले प्रश्न उठाये तो उनका तर्कपरक जवाब देने के बजाय मंचासीन नेताओं ने उनके प्रश्नों से किनारा कर लिया। ठीक इसी तरह एक बार ज़िला कमेटी की बैठक में जब उन्होंने स्थानीय नेतृत्व से सम्बन्धित कुछ प्रश्न उठाये तो एक कॉमरेड ने उनका कुर्ता खींचते हुए उन्हें चुपचाप बैठने की सलाह दी। ज़ाहिरा तौर पर कॉमरेड अमर ने ऐसी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टी में काम करने से इंकार कर दिया। सीपीएम से अपने जुड़ाव के कुछेक वर्षों के दौरान वे नियमित रुप से किसान सभा की बैठकों, पार्टी मीटिंगों में भाग लेने के साथ-साथ पोस्टर चिपकाने, पर्चा बाँटने, दीवार-लेखन जैसे प्रचारात्मक कार्य भी नियमित तौर पर किया करते थे।

अलीगढ़ काफ़ी पहले से ही हिन्दू फासीवादियों का गढ़ रहा है। फासिस्टों के बारे में उनकी पक्की धारणा थी कि वे बेहद क़ायर होते हैं और तभी हमलावर होते हैं जब झुण्ड में होते हैं। बातो-बातों में एक ऐसी ही घटना का ज़िक्र करते हुए उन्होंने बताया था कि अलीगढ़ के जवाहर भवन में एक गोष्ठी के दौरान भाजपा के एक नेता ने कुछ फासिस्ट गुण्डों को साथ लेकर कार्यक्रम को तितर-बितर करने की कोशिश की और आयोजकों पर हमला किया। कॉमरेड अमर और वहाँ मौजूद कुछ अन्य कॉमरेडों ने साहस और सूझबूझ से काम लेते हुए तुरन्त जवाबी हमला किया और सदन में बैठे लोगों को भी ललकारा। इसका नतीजा यह हुआ कि भाजपायी गुण्डों के पैर वहाँ से तुरन्त उखड़ गये और उन्हें मारपीट कर भगा दिया गया।

एक समय ऐसा भी था, जब कॉमरेड अमर संजीदगी से पूर्णकालिक कार्यकर्ता की भूमिका अपनाना चाहते थे, लेकिन सीपीएम के संशोधनवादी चरित्र को देखकर उन्होंने अपना इरादा बदल दिया। 1987 में पार्टी छोड़ने के बाद वे लम्बे समय तक विकल्पहीनता के अन्धेरे में भटकते रहे लेकिन मार्क्सवाद से उनका भरोसा तनिक भी नहीं डिगा। वर्ष 2005 में एक भीषण सड़क दुर्घटना के कारण उनका चलना-फिरना बेहद सीमित हो गया और उन्हें बैंक की नौकरी भी छोड़नी पड़ी। इन बेहद कठिन हालातों में भी उन्होंने हार नहीं मानी और अध्ययन, अनुवाद तथा कविता कर्म को जारी रखा। इस बीच उनकी ग़ज़लों के संकलन 'आँखों में कल का सपना है' और 'मैं ना कहता था' प्रकाशित हुए। साथ ही साथ उन्होंने अंग्रेज़ी के अपने कवि मित्र सुरेन्द्र भूटानी की कविताओं का हिन्दी अनुवाद भी किया। हाल के कुछ वर्षों में उन्होंने कार्ल मार्क्स की जेल्डा कोट्स लिखित सुप्रसिद्ध जीवनी का अनुवाद भी किया। लैंगस्टन ह्यूज़ की कविताओं का उनके द्वारा किया गया अनुवाद 'स्थगित स्वप्न' के नाम से प्रकाशित हुआ और इन दिनों वे राहुल फ़ाउण्डेशन के लिए मार्क्स-एंगेल्स के बारे में उनके समकालीनों के संस्मरणों के एक दुर्लभ संकलन के अनुवाद में अपनी जीवनसाथी अर्चना के साथ व्यस्त थे।

कॉमरेड अमर को व्यक्तिगत तौर पर जानने वाले लोग बता सकते हैं कि कॉमरेड अमर न केवल सहृदय एवं संवेदनशील व्यक्तित्व के धनी थे बल्कि वे साहसी, और ग़लत को ग़लत बोलने का माद्दा रखने वाले व्यक्ति भी थे। मार्क्सवाद के प्रति उनकी अडिग निष्ठा का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि सीपीएम के संशोधनवाद को समझने के बाद उपजी हताशा-निराशा और विकल्पहीनता तथा दुर्घटना के बाद पैदा हुई शारीरिक अशक्तता के बावजूद उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और क्रान्तिकारी मार्क्सवाद में उनकी अटूट आस्था बनी रही। उनकी अन्तिम इच्छा के अनुरूप उनके मृत शरीर को अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के जवाहरलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज को सौंप दिया गया।

कॉमरेड अमर का जीवन और उनकी जिजीविषा हमें क्रान्तिकारी परिवर्तन के साझा लक्ष्य की ओर लगातार बढ़ते रहने की हमेशा प्रेरणा देती रहेगी। कॉमरेड अमर हमारे संकल्पों में हमेशा जीवित रहेंगे।

# एक सम्भावना-सम्पन्न आन्दोलन के अन्तरविरोध और भविष्य का प्रश्न

(पेज 11 से आगे)

यह कोई नहीं बताता।' तो आप ही बताएँ कि उन्होंने क्या कहा था और आप किन चीजों से सहमत हैं।

**इन प्रश्नों पर गोलमोल अवस्थिति होने के कारण ही सम्भवत: मंच की प्रकृति बदलते ही आन्दोलन के नेतृत्व की विचारधारात्मक बातें भी बदल जाती हैं।** यह एक प्रकार का व्यवहारवाद और अवसरवाद ही है, जो मानता है कि कोई भी विचारधारात्मक अवस्थिति होनी ही नहीं चाहिए (हालांकि यह स्वयं एक विचारधारात्मक अवस्थिति है!), सिर्फ रणकौशल व पद्धति होनी चाहिए। किसी भी बड़े मंच से अम्बेडकरवाद और अस्मितावाद की आलोचना से बचकर निकल जाने के प्रयास को साथी जिग्नेश के वक्तव्यों में स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। ज़्यादा से ज़्यादा, वे उन राजनीतिक धाराओं की आलोचना करते हैं, जो कि अम्बेडकरवादी व्यवहारवाद के विकृत और पतित रूप हैं, जैसे कि बसपा, बामसेफ आदि की राजनीति। **लेकिन वहीं गांवों-कस्बों में सामान्य सभाओं में वे अस्मितावाद और बहुजनवाद पर सही चोट भी करते हैं और जाति-अन्त आन्दोलन को प्रतीकात्मक मुद्दों से आगे ले जाने की बात करते हैं।** कभी वे शेहला रशीद, तो कभी पूनावाला, तो कभी कन्हैया कुमार के साथ मंच साझा करते हैं; कभी वे 'जय भीम' पर ज़ोर देते नज़र आते हैं, तो कभी लाल सलाम पर। ज़रूरत पड़ने पर वे 'जय सरदार' का नारा उठा देने से भी नहीं सकुचाते। **ऐसे में, कभी-कभी यह प्रश्न दिमाग में आता है कि इनमें से असली, ऑथेंटिक, जेनुइन जिग्नेश मेवानी कौन है? इसीलिए इस उपशीर्षक में हमने यह पूछा, 'क्या असली जिग्नेश मेवानी सामने आयेंगे?'**

### निष्कर्ष

कई अन्य कई मुद्दे हैं जिन पर बात रखी जा सकती है, लेकिन स्थान की सीमा होने के कारण उन मुद्दों पर हम भविष्य में कभी बात रखेंगे। मिसाल के तौर पर, आज के आक्रामक साम्प्रदायिक व ब्राह्मणवादी फासीवाद के दौर में वे आन्दोलन और संगठन ही टिक पायेंगे जिनकी जड़ें जनता के बीच गहरी जमी होंगी, जिनका कुछ इलाकों में जनता के बीच गहरा सामाजिक आधार होगा। ऐसे में, केवल हाई प्रोफाइल मंचों पर "वामपंथी" और "प्रगतिशील" सुपरस्टारों के साथ मिलकर मोदी सरकार पर हमले से वास्तव में कोई फायदा नहीं होगा। लेकिन जनदिशा को लागू करने की कमी और **नेतृत्व की मंशा न होने के बावजूद** एक व्यक्ति या चन्द व्यक्तियों के इर्द-गिर्द घूमने से आन्दोलन अन्दर से कमज़ोर बना रहेगा और किसी भी गाढ़े और कठिन वक्त में इसके सामने अस्तित्व का संकट पैदा हो जायेगा।

साथ ही, हमारा स्पष्ट तौर पर मानना है कि आज जाति-अन्त के आन्दोलनों और संगठनों को अस्मिता के नाम पर संगठित नहीं किया जाना चाहिए। कारण यह कि अस्मिता का तर्क ही यही होता है कि वह अपनी विपरीत अस्मिता को बढ़ावा देकर ही मज़बूत की जा सकती है। अगर दलित अस्मिता को मज़बूत करके जाति-अन्त की लड़ाई लड़ी जायेगी तो वह जाने या अनजाने अन्य जातिगत अस्मिताओं और विशेष तौर पर अपने ठीक विपरीत जातिगत अस्मिता को भी मजबूत बनायेगी। और इन अस्मिताओं के संघर्ष में नुकसान हमेशा परिधिगत और अल्पसंख्यक अस्मिताओं को होगा। आप मानकर चलें कि यदि 'दलित शक्ति सम्मेलन', 'दलित अस्मिता यात्रा' आयोजित होंगे तो फिर 'मराठा शक्ति सम्मेलन', 'पटेल शक्ति सम्मेलन' और 'जाट स्मृति यात्राएँ' भी आयोजित होंगी। अस्मिताओं की इस प्रतिस्पर्द्धा में अन्तत: कौन जीतेगा? ज़रा सोचिये। अस्मिताओं की जकड़बन्दी को और तथाकथित दबंग जातियों के वर्गीय शोषण और उनके द्वारा किये जाने वाले सामाजिक उत्पीड़न का जवाब वर्गीय गोलबन्दी के ज़रिये ही दिया जा सकता है क्योंकि यह उनकी जातिगत गोलबन्दी को तोड़ सकती है, कमज़ोर कर सकती है और इस रूप में जाति-अन्त के आन्दोलन को आगे बढ़ा सकती है, कारण यह कि इन जातियों का बहुसंख्यक भी आज मज़दूरों, अर्द्धमज़दूरों व निम्न मध्यवर्गों में शामिल हो रहा है और अपनी ही जाति के कुलीन वर्ग के शोषण का शिकार हो रहा है। इसलिए संगठन या आन्दोलन के नाम में "दलित" शब्द की बजाय "जाति उन्मूलन" या "जाति-अन्त" जोड़ना बेहद ज़रूरी है और इसके लिए एक पल भी इंतज़ार करना नुकसानदेह साबित होगा। इन बिन्दुओं पर हम अभी स्थान की कमी के कारण विस्तार से बात नहीं रख पा रहे हैं। लेकिन अन्य कई प्रश्न हैं जिनका समाधान इस शानदार और सम्भावना-सम्पन्न आन्दोलन को करना होगा।

अन्त में हम एक बार यह भी स्पष्ट करना चाहेंगे कि हमारी इस कॉमरेडाना आलोचना का मकसद है इस आन्दोलन के सक्षम और युवा नेतृत्व के समक्ष कुछ ज़रूरी सवालों को उठाना जिनका जवाब भविष्य में इसे देना होगा। आज समूचा जाति-उन्मूलन आन्दोलन और साथ ही हम जैसे क्रान्तिकारी संगठन व व्यक्ति जिग्नेश मेवानी की अगुवाई में चल रहे इस आन्दोलन को उम्मीद, अधीरता और अकुलाहट के साथ देख रहे हैं। किसी भी किस्म का विचारधारात्मक समझौता, वैचारिक स्पष्टवादिता की कमी और विचारधारा और विज्ञान की कीमत पर रणकौशल और कूटनीति करने की हमेशा भारी कीमत चुकानी पड़ती है, चाहे इसका नतीजा तत्काल सामने न आये, तो भी।

हम इन कॉमरेडाना आलोचना में बेहद विनम्रता के साथ अपनी कुछ बातें जिग्नेश और आन्दोलन के अन्य साथियों से इसलिए साझा करना चाहते थे क्योंकि आज पूरे देश में क्रान्तिकारी जाति-अन्त आन्दोलन और क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन दोनों ही बड़ी आशा, उत्सुकता और अधीरता के साथ ऊना के बाद पैदा हुए आन्दोलन की ओर देख रहे हैं। विचारधारात्मक तौर पर कोई भी समझौता, वैचारिक अवसरवाद व व्यवहारवाद और विचारधारा व विज्ञान की कीमत पर की जाने वाली कूटनीति, 'डिप्लोमैसी' व रणकौशल हमेशा भयंकर नुकसान पहुँचाते हैं। सबसे खतरनाक बात यह है कि ऐसे नुकसान के बारे में तत्काल कुछ भी पता नहीं चलता और जब तक पता चलता है तब तक विच्युति पहले विचलन और फिर प्रस्थान में तब्दील हो चुकी होती है। इसलिए आज ही एक स्पष्ट और सही विचारधारात्मक दिशा के लिए अध्ययन और व्यवहार दोनों ही करना होगा और अवसरवाद, अस्मितावाद और व्यवहारवाद के खतरनाक प्रभाव से बचना होगा। हमें उम्मीद है कि हमारे विनम्र प्रेक्षणों और आलोचनात्मक विवेचन को साथीगण समझेंगे और भविष्य में मिलकर हम जातिविहीन और वर्गविहीन समाज के निर्माण के क्रान्तिकारी आन्दोलन के इन प्रश्नों को हल कर सकेंगे।

●●●

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2017-2019
प्रेषण डाकघर : आर0एम0एस, चारबाग, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

# गटर साफ़ करने के दौरान सफ़ाईकर्मियों की मौतों का ज़िम्मेदार कौन?

– श्‍वेता

जोगिन्दर, अन्नू, राजेश, जहाँगीर, एजाज़, रामबाबू, वेंकेटेश्वर राव, मानस, विभूति। ये उन चन्द लोगों के नाम हैं जिन्हें अपनी ज़िन्दगी एक बेहद अमानवीय, नारकीय, अपमानजनक, घिनौने पेशे के कारण गँवानी पड़ी। इन सभी की मौत पिछले कुछ दिनों में गटर साफ़ करने के दौरान हुई। बीती 11 अगस्त को जहाँगीर और एजाज़ पूर्वी दिल्ली के एक मॉल में गटर की सफ़ाई करने के लिए उतरे और गटर में मौजूद ज़हरीली गैसों के कारण उनकी मौत हो गयी। इस घटना से क़रीब छ: दिन पहले दिल्ली जल बोर्ड की सीवर लाइन की सफ़ाई के दौरान 3 सफ़ाईकर्मियों ने अपनी जानें गँवायीं। बेशर्मी की हद तो यह थी कि दिल्ली जल बोर्ड ने उन्हें अपना कर्मचारी मानने से ही इंकार कर दिया। यहाँ यह बात बताते चलें कि सरकारी, ग़ैर-सरकारी और निजी क्षेत्रों में सफ़ाई का अधिकतर काम ठेके पर करवाया जाता है, जिससे प्रमुख नियोक्ता साफ़-साफ़ अपनी ज़िम्मेदारी से बच निकल जाता है। थोड़ा और पीछे जायें तो 14 जुलाई को दिल्ली के घिटौरनी इलाक़े में सीवेज की सफ़ाई के दौरान 4 सफ़ाईकर्मियों की मौत हुई। इसके अलावा गटर साफ़ करने के दौरान मई के महीने में उड़ीसा में दो लोगों, मार्च में विजयवाड़ा में 2 लोगों, बेंगलुरू में 3 लोगों और फ़रवरी में मुम्बई में 3 लोगों के मौत की ख़बरें आयी थीं। अगर 1 जनवरी 2017 से 17 जुलाई 2017 तक की बात की जाये तो इस दौरान गटर में काम करने के दौरान 60 सफ़ाईकर्मियों की मौत हुई। बेंगलुरू की एक ग़ैर-सरकारी संस्था के मुताबिक़ अकेले दिल्ली में ही हर साल 100 से भी अधिक सफ़ाईकर्मियों की मौत गटर साफ़ करने के दौरान होती है। सफ़ाई कर्मचारी आन्दोलन नामक संस्था के अनुसार वर्ष 2016 में गटर साफ़ करते वक़्त 1300 लोगों की मौत हुई थी। आँकड़ों की यह फ़ेहरिस्त बहुत लम्बी हो सकती है। ग़ौरतलब है कि इनमें से बहुत से मामले तो ऐसे होते हैं जिन्हें रिपोर्ट तक नहीं किया जाता, इसलिए स्थिति की मुक़म्मल तस्वीर का अन्दाज़ा लगाना मुश्किल है। फिर भी इन आँकड़ों के ज़रिये स्थिति की भयावहता की एक तस्वीर तो सामने आ ही जाती है।

यह एक त्रासदी ही है कि आज के इतने विकसित तकनीकी युग में भी इंसानों से इस तरह के काम कराये जा रहे हैं। सीवरेज गटरों और पाइपों की सफ़ाई का काम भारत में मुख्य तौर पर आज भी बिना मशीनों के ही होता है। पूँजीवाद को जहाँ लगता है कि अत्याधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल करने से उसका मुनाफ़ा बढ़ सकता है, वहाँ वह इन तकनीकों का जमकर इस्तेमाल करता है। लेकिन जहाँ उसे बेहद सस्ती दरों पर बिना मशीनों के काम करने वाले लोग आसानी से मिल जाते हैं, वहाँ पर मशीनरी पर होने वाले ख़र्च को बचाने के लिए इंसानों को मौत के मुँह में धकेलना बेहतर समझ जाता है।

कहने को तो गटर में सफ़ाईकर्मियों को उतरवाकर सफ़ाई करवाने और मैला ढोने का काम ग़ैर-क़ानूनी है। इसकी रोकथाम के लिए भारत में 1993 में 'इम्प्लायमेण्ट ऑफ़ मैनुअल स्कैवैंजर्ज़ एण्ड कंस्ट्रक्शन ऑफ़ ड्राइ लैट्रीन्स (प्रोहिबिशन) एक्ट' नाम का क़ानून भी बना था। यही नहीं वर्ष 2013 में भारत सरकार ने 'मैनुअल स्कैवैंजर्ज़ एण्ड दियर रिहेबीलिटेशन एक्ट' बनाया जिसके तहत गटर की सफ़ाई से लेकर मैला ढोना जैसे सभी कामों पर प्रतिबन्ध लगाया गया। इसके अन्तर्गत गटर की सफ़ाई या मैला ढोने का काम करवाने वाले के लिए सज़ा के प्रावधान के अलावा सफ़ाईकर्मियों के लिए पुनर्वास जैसे प्रावधान शामिल किये गये। अमूमन तो ऐसे मसलों पर कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं होती। अगर होती भी है तो ज़्यादातर मसलों में सेक्शन 304 ए (लापरवाही के कारण मौत) के तहत मुक़दमा दर्ज किया जाता है जो कि एक ज़मानती धारा है। स्पष्टत: मामले को हल्का करने के लिए ही इस धारा का उपयोग किया जाता है। यूँ तो सरकार ने 'सेल्फ़ एम्प्लोयमेण्ट स्कीम फ़ॉर रिहेबीलिटेशन ऑफ़ मैनुअल स्कैवैंजर्ज़' की योजना के अन्तर्गत गटर की सफ़ाई या मैला ढोने का काम करने वालों के लिए पुनर्वास का प्रावधान शामिल किया है। हालाँकि सरकार इन सफ़ाईकर्मियों के पुनर्वास के काम के प्रति कितनी गम्भीर है इसकी झलक तो इस बात से मिल जाती है कि सफ़ाईकर्मियों के पुनर्वास के लिए वर्ष 2015-16 में 470.19 करोड़ का जो बजट आबंटित किया गया था, उसमें से एक रुपया भी ख़र्च नहीं किया गया। यही नहीं 'मैनुअल स्कैवैंजर्ज़ एण्ड दियर रिहेबीलिटेशन एक्ट' के तहत सफ़ाईकर्मियों के पुनर्वास के लिए वर्ष 2013 में 4,656 करोड़ के बजट को घटाकर वर्ष 2016 में मात्र 10 करोड़ कर दिया गया। सुप्रीम कोर्ट के 2014 के एक फ़ैसले के अनुसार गटर में काम के दौरान यदि किसी सफ़ाईकर्मी की मौत हो जाती है तो उसे 10 लाख का मुआवज़ा दिया जायेगा। क़ानूनों, कमीशनों और कमेटियों की यह फ़ेहरिस्त भी काफ़ी लम्बी है। हालाँकि मेहनतकशों के लिए बने तमाम क़ानून सिर्फ़ काग़ज़ों की शोभा बढ़ाने के लिए ही बनते हैं।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल 1,80,657 परिवार ऐसे हैं जो गटर की सफ़ाई या मैला ढोने के काम में लगे हुए हैं और इसी गणना में यह भी पाया गया कि क़रीब 7,94,000 लोग इस काम में लगे हुए हैं। अब इन आँकड़ों को वास्तविकता से कितना कम करके आँका गया है, उसका अनुमान इस बात से लग जाता है कि भारतीय रेलवे जो सफ़ाईकर्मियों का सबसे बड़ा नियोक्ता है, ख़ुद इस सेक्टर में लगे सफ़ाईकर्मियों की संख्या को क़ानूनी जामे में छिपा देता है। ग़ौरतलब बात यह है कि रेलवे इन सफ़ाईकर्मियों की नियुक्ति "मैला ढोने वाली श्रेणी में नहीं" बल्कि "क्लीनर" की श्रेणी के तहत करता है या फिर इस काम को ठेके पर दे देता है। लेकिन हम जानते हैं कि रेलवे ट्रैक और रेलवे टॉयलेटों की सफ़ाई में लगे हुए कर्मचारी वस्तुत: मैला साफ़ करने का ही काम करते हैं। ग़ौरतलब है कि गटर की सफ़ाई या मैला ढोने के काम में दलित जातियों की बहुतायत शामिल है।

यहाँ एक और ज़रूरी तथ्य का ज़िक्र भी करते चलें। सामाजिक न्याय और अधिकारिता मन्त्री थावर चन्द गहलोत के संसदीय बयान के अनुसार देश में अभी भी 26 लाख शुष्क शौचालय हैं (ड्राइ लैट्रीन जहाँ मुफले जैसे औज़ारों से मैला उठाया जाता है और बाल्टियों या तसलों में भरकर सिर पर ढोया जाता है)। 1993 में 'इम्प्लोयमेण्ट ऑफ़ मैनुअल स्कैवैंजर्ज़ एण्ड कंस्ट्रक्शन ऑफ़ ड्राइ लैट्रीन्स (प्रोहिबिशन) एक्ट' बनने के 14 वर्षों बाद भी 26 लाख शुष्क शौचालयों की मौजूदगी सरकार की इस समस्या से निपटने के प्रति उसकी मंशा को ज़ाहिर कर देती है। यही नहीं सरकारें पुरज़ोर तरीक़े से गटर साफ़ करने और मैला ढोने के काम में लगे सफ़ाईकर्मियों के पुनर्वास के हवाई दावे करने में लगी हुई है। देखिये, अपनी नाकामयाबी छिपाने के लिए तमाम सरकारें किस तरह आँकड़ों की बाज़ीगरी कर रही हैं। वर्ष 2015 में तेलंगाना सरकार ने बताया कि उनके यहाँ 1,57,321 शुष्क शौचालय हैं, पर एक भी मैला ढोने वाला नहीं है। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश में 854 शुष्क शौचालय हैं, एक भी मैला ढोने वाला नहीं। छत्तीसगढ़ में 4391 शुष्क शौचालय हैं और सिर्फ़ तीन मैला ढोने वाले हैं। इसी तरह के हवाई दावों के गोले अन्य राज्यों ने भी जमकर दागे हैं।

मात्र 200-300 रुपये दिन-भर की मज़दूरी के लिए लाखों सफ़ाईकर्मी अपनी जान को जाखिम में डालने के लिए मजबूर हैं। सफ़ाईकर्मियों को न तो हादसों से सुरक्षा के इन्तज़ाम ही हासिल हैं और न ही बीमारियों से बचाव के इन्तज़ाम। कार्बन मोनोआक्साइड, हाइड्रोजन सल्फ़ाइड और मीथेन जैसी ज़हरीली गैसों के सीधे सम्पर्क में रहने के कारण मौतें तो होती ही हैं पर जो लोग जीवित भी रहते है, उन्हें कई तरह की साँस की और दिमाग़ी बीमारियाँ होती हैं। इसके अलावा दस्त, टाइफ़ाइड और हेपेटाइटिस-ए जैसी बीमारियाँ आमतौर पर होती हैं। ई कौली नामक बैक्टीरिया पेट सम्बन्धी बहुत गम्भीर रोगों का जन्मदाता है और क्लोस्ट्रीडम टैटली नामक बैक्टीरिया खुले ज़ख़्मों के सीधे सम्पर्क में आने के साथ ही टेटनस का कारण बनता है। ये सारे बैक्टीरिया गन्दे पानी में आमतौर पर पाये जाते हैं और चमड़ी के रोग तो इतने क़िस्म के होते हैं कि उनकी गिनती करना मुश्किल है।

यही नहीं, सफ़ाई का ज़्यादातर काम ठेके पर करवाया जाता है, जिसके कारण श्रम क़ानूनों के तहत न्यूनतम मज़दूरी, पहचान पत्र, ईपीएफ़, ईएसआई आदि अधिकार भी सफ़ाईकर्मियों को हासिल नहीं हैं। मैला ढोने के कामों में ज़्यादातर महिलाएँ लगी हुई हैं जिन्हें क़दम-ब-क़दम सुपरवाइज़र, ठेकेदार, सेनेट्री इंस्पेक्टर से यौन उत्पीड़न का भी सामना करना पड़ता है। कहने के लिए तो सफ़ाईकर्मियों के बीच अलग-अलग संगठन मौजूद हैं, पर वे महज़ चुनावी पार्टियों और ग़द्दार नेताओं की दलाली में लगे हुए हैं, जिससे आम सफ़ाईकर्मियों का कोई भला नहीं हो सकता। जब तक पूँजीवादी व्यवस्था क़ायम है, तब तक सफ़ाईकर्मियों को काम के बदतर हालातों, सामाजिक अपमान, ग़रीबी, बदहाली और अन्याय से छुटकारा नहीं मिल सकता, क्योंकि उनकी इन परिस्थितियों और मौतों का ज़िम्मेदार और कोई नहीं ख़ुद पूँजीवाद है।

# देश की आर्थिक राजधानी मुम्बई के बच्चों में बढ़ता कुपोषण

मुम्बई भारत की आर्थिक राजधानी और स्वप्ननगरी कही जाती है, क्योंकि देश के सबसे ज़्यादा अमीर लोग यहाँ रहते हैं। पिछले सालों में इनकी दौलत का अम्बार और भी तेज़ी से ऊँचा हुआ है। लेकिन इनकी दौलत का यह अम्बार जिन श्रमिकों की मेहनत के बल पर खड़ा होता है, उनकी ज़िन्दगी की हालत पर इसका क्या असर पड़ा है, इसको भी जानना बेहद ज़रूरी है। पूँजीवादी व्यवस्था का सबसे बड़ा सत्य यही है कि अगर एक ओर अमीरों की दौलत बढ़ती जा रही हो तो दूसरी ओर निश्चित ही बहुत बड़ी तादाद में ग़रीब, वंचित, मेहनतकश लोग भी मिलेंगे, जिनकी ज़िन्दगी और भी ज़्यादा दु:ख-तकलीफ़ के गहरे कूप के अंधकार में गिरती जा रही होगी।

मुम्बई भी ऐसा ही एक ऊपरी तौर पर चमकदार शहर है जहाँ एक ओर अम्बानी, टाटा, बिड़ला, अडानी जैसे भारी दौलतमन्द लोग रहते हैं; वहीं यहाँ की अधिकांश मेहनतकश जनसंख्या भारी ग़रीबी और तंगहाली में गन्दगी से बजबजाती, दड़बों की तरह भरी झोपड़पट्टियों में रहने को मजबूर है। हालत यह है कि इस 'मायानगरी' के दो तिहाई निवासियों को इस शहर की सिर्फ़ 8% जगह ही रहने को मयस्सर है। शायद इनमें से भी बहुतों ने 2014 के चुनाव के पहले के भारी प्रचार से चकाचौंध होकर नरेन्द्र मोदी के 'सबका साथ सबका विकास' और 'अच्छे दिनों' के वादों में भरोसा किया था, देश के चहुमुँखी विकास से अपनी ज़िन्दगी में बेहतरी आने का सपना देखा था। पर नतीजा क्या हुआ?

### 2 साल में 4 गुना बढ़ा स्कूली बच्चों में कुपोषण

मुम्बई महानगर पालिका (बीएमसी) के स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले असर के उदाहरण के ज़रिये जानते हैं। प्रजा फ़ाउण्डेशन नामक संस्था द्वारा बीएमसी के स्कूलों में छात्रों की स्वास्थ्य जाँच पर आधारित एक रिपोर्ट के अनुसार 'अच्छे दिनों' के पहले 2 सालों में ही बीएमसी के स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों में कुपोषण चार गुना बढ़ गया है। 2013-14 अर्थात मोदी सरकार के आने के ठीक पहले समाप्त वर्ष में इन स्कूलों के 8% बच्चे ही कुपोषित थे, जबकि इसके ठीक दो साल बाद 2015-16 में कुपोषित विद्यार्थियों की तादाद बढ़कर 34% हो गयी है। 2013-14 में 4 लाख 4 हज़ार छात्रों में से 13 हज़ार लड़के और 17 हज़ार लड़कियाँ कुपोषित थे। हालाँकि 2015-16 में कुल छात्रों की तादाद घटकर 3 लाख 84 हज़ार ही रह गयी पर कुपोषित छात्रों की तादाद बढ़कर लड़कों में 63 हज़ार और लड़कियों में 67 हज़ार हो गयी। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे में भी यह पाया गया कि मुम्बई के एक चौथाई से अधिक बच्चों का क़द और वज़न उनकी उम्र के सामान्य बच्चों के स्तर से कहीं कम है। कुपोषण में इस वृद्धि का सम्बन्ध डायरिया की बढ़ती बीमारी से भी पाया गया है, क्योंकि इन 'अच्छे दिनों' में डायरिया भी घटने के बजाय बढ़ा है और 2012 के 99 हज़ार से बढ़कर 2016 में इसके मामले 1 लाख 19 हज़ार हो गये। इसकी वजह है कि बढ़ते कुपोषण की तरह ही डायरिया के शिकार भी मुम्बई के मानखुर्द, गोवण्डी, कुर्ला, आदि सबसे ग़रीब और गन्दगी भरी बस्तियों के निवासी हैं, जहाँ पेय जल और मल निकासी की व्यवस्था लगभग नहीं के बराबर, और वह भी बेहद बदइन्तज़ामी की हालत में है।

### मिड-डे मील की लूट

इस रिपोर्ट का निष्कर्ष है कि मुम्बई के स्कूली बच्चों में कुपोषण की स्थिति बेहद ग़रीब माने जाने वाले सोमालिया, इथिओपिया, कांगो, जैसे सहारा के अफ़्रीकी मुल्कों से भी ख़राब है। यह हाल तब है जबकि कहने के लिए इन स्कूलों में मिड-डे मील और बाल विकास के अन्य कार्यक्रमों पर बड़ा ख़र्च करने का दावा किया जाता है। इससे ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इन कार्यक्रमों में किस पैमाने पर लूट और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। ग़ौरतलब है कि महाराष्ट्र बीजेपी सरकार की बालकल्याण मन्त्री पंकजा मुण्डे पर पहले ही बच्चों को पौष्टिक पदार्थ के तौर पर दी जाने वाली चिक्की में ग़लत तरह से ठेके देने और मिट्टी भरी चिक्की बच्चों को दिये जाने में सैकड़ों करोड़ रुपये के घोटाले का आरोप लग चुका है, जिस पर आज तक कोई जाँच तक नहीं करायी गयी।

निष्कर्ष यह कि 'सबका हाथ सबका विकास' के द्वारा 'अच्छे दिन' लाने वाली मोदी सरकार के आने के बाद जहाँ यह सही है कि एक ओर चन्द पूँजीपतियों की सम्पत्ति और मुनाफ़े में बेतहाशा वृद्धि हुई है, वहाँ असली बात यह है कि इस वृद्धि की असली क़ीमत चुकाई है देश के शहरी-ग्रामीण मज़दूरों, छोटे किसानों और निम्न मध्यवर्गीय लोगों द्वारा - रोज़गार के मौक़ों में कटौती, महँगाई की तुलना में घटती आमदनी द्वारा जिसका असर उनके जीवन के हर क्षेत्र पर पड़ना ही था। वह असर अब ज़रूरी पोषक भोजन की मात्रा में विवशता में की गयी कमी के तौर पर सामने आ रहा है, जिसका नतीजा बच्चों और बड़ों - सबके कुपोषण में यह बेतहाशा वृद्धि है। और इस पर मोदी सरकार की क्या प्रतिक्रिया है? आम लोगों के जीवन में राहत देने का कोई क़दम उठाने, बच्चों के लिए सन्तुलित, पोषक आहार का इन्तज़ाम करने, इसमें लूट और भ्रष्टाचार को ख़त्म करने के बजाय उसने क्या किया? पहले नेशनल न्यूट्रिशन मॉनिटरिंग ब्यूरो (एनएनएमबी) नाम की एक संस्था थी जो भोजन में पोषण की मात्रा का सर्वे कर इसकी रिपोर्ट देती थी। मोदी सरकार ने आते ही सबसे पहले उस संस्था को ही बन्द कर दिया, जिससे इन सब बातों का ब्यौरा भी समाज के सामने न आने पाये।

– मुकेश असीम

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006